ईश्वर दर्शन

(आध्यात्मिक प्रश्नोत्तरी)

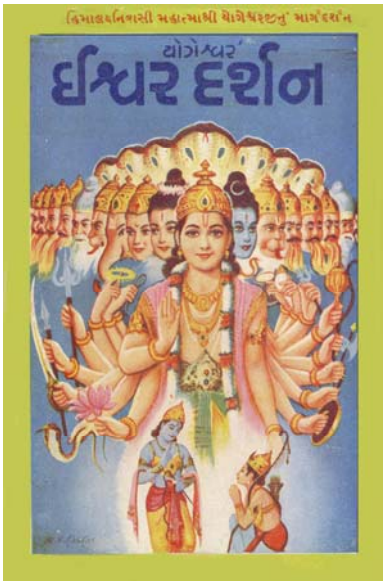

लेखक : श्री योगेश्वरजी

अनुवाद : प्रा. शशीकांत कोन्ट्राकटर

NOTICE

સર્વ હક્ક લેખકને સ્વાધીન

All rights reserved by Author

The content of this e-book may be used as an information resource. Downloading or otherwise transmitting electronic copies of this book or portions thereof, and/or printing or duplicating hard copies of it or portions thereof is authorized for **individual non-profit use ONLY**. Any other use including the reproduction, modification, distribution, transmission, republication, display or performance of the content of this book for commercial purposes is strictly prohibited.

Failure to include this notice on any digital or printed copy of this book or portion thereof; unauthorized registration of a claim of copyright on this book; adding or omitting from the content of it without clearly indicating that such has been done; or profiting from transmission or duplication of it, is a clear violation of the permission given in this notice and is strictly prohibited. Violators will be prosecuted.

Permission for use beyond that specifically allowed by this notice may be requested in writing from Swargarohan, Danta Road, Ambaji (North Gujarat) INDIA.

*

E-Book

Title	: ईश्वर दर्शन (Ishwar Darshan)
Language	: Hindi
Version	: 1.0
Pages	: 114
Created	: December 25th, 2017.

*

NOTE

This e-book is a manifestation of our humble effort to present Shri Yogeshwarji's literary work in digital format. Due care has been taken in preparing the material of this e-book from its original print version. However, if you find any error or omissions, please let us know. We welcome your comments.

* * *

महात्मा श्री योगेश्वरजी - एक परिचय

(१५ अगस्त, १९२१ – १८ मार्च, १९८४)

महात्मा योगेश्वरजी साम्प्रत भारत के एक महान ज्योतिर्धर है । युगपुरुष इस वसुधा पर अवतरित होते हैं और युग की छाती पर अपने चरणचिन्ह् छोड़कर चले जाते हैं । ऐसे समर्थ पुरुष जिधर का आदेश देते हैं, उधर इतिहास अपना सर झुका देता हैं । अर्थात् युगुपुरुष इतिहास के अनुसार नहीं चलते हैं वरन इतिहास उनके आदेशानुसार चलता है । पूज्य महात्मा योगेश्वरजी भी ऐसे ही युगुपुरुष हैं, जिनका उदय भारतीय क्षितिज पर हुआ है । गुजरात, भारत और विश्व के लिए यह एक आल्हादमय घटना है कि योग-प्रज्ञा की प्रच्छन्न गंगा योगेश्वररूपी आधुनिक भगीरथ द्वारा धरती के कण-कण को पावन व परिप्लावित करती हुई बहने लगी है और मानव-फुलवारी को फल-फूल से समृद्ध करने के लिए बेताब हो रही है । आप अनेक आध्यात्मिक पिपासुओं को ज्ञान-जल पिलाकर तृप्त करते हैं ।

आपका जन्म पन्द्रह अगस्त १९२१ के रोज कृषि-व्यवसायी ब्राह्मण-परिवार में सरोडा (जिला - अहमदाबाद) नामक छोटे से गाँव में हुआ है । आप अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हैं । जब आपकी उम्र आठ सालकी थी तब आपके पिताजी परलोक सिधार गये । आप बम्बई गये और वहां छात्रालय में रहकर विद्याभ्यास किया । शैशव से ही आपको आध्यात्मिक जीवन की तीव्र एषणा थी । बी.ए. की डीग्री लेने से पहले, पूर्वजन्म के संस्कार जागृत हो जाने पर आपने प्रकाश के पथ पर हिमालय की ओर प्रस्थान किया । वहाँ देवप्रयाग के निकट की पहाडी पर स्थित कुटिर में एवं दशरथाचल पहाड पर सात साल तक (इनमें पाँच वर्ष तो संपूर्ण मौन धारण कर) तपश्चर्या की और फलतः साधना के सुमेरु शिखर पर आसीन हुए । आपको मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण, भगवान शंकर एवं माँ जगदम्बा के दर्शन हुए । अनेक सदेह एवं विदेह सन्तो के भी दर्शन हुए जैसे की नारद मुनि, भगवान रमण महर्षि, संत ज्ञानेश्वर, शिरडी के महान सन्त सांईबाबा, भक्त जलाराम, स्वामी सहजानंद, महात्मा गांधीजी, नेपालीबाबा आदि ।

आपकी बाहर से अतिसामान्य जान पड़नेवाली देह में सिंह समान शक्ति के तेजपुंज की झगमगाहट देखते ही बनती है । आपकी वाणी ओजस्वी है । आपके प्रवचन सरल, तटस्थ, मार्मिक एवं सर्वग्राही होते हैं । आपकी अमृतवाणी का श्रवण करना भाग्य की बात है । आपके पास जो कोई प्रेम का धन एवं श्रध्धा का श्रीफल लेकर आता है वह खाली हाथ वापस नहीं जाता, यह बहुत से साधकों का अनुभव है । आपके सान्निध्य में शांति की अनुभूति होती है ।

आपके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पहलू मुझे और कई विदेशियों को आकृष्ट करता है, वह है आपका सच्चा त्याग । आप भारतीय संस्कृति के व्याख्याता साहित्यकार हैं । आपने भारतीय संस्कृति को आत्मसात् किया है । यही कारण है कि आप विदेशों में जाकर वहाँ भारतीय संस्कृति का प्रचार व प्रसार सफलता से कर सकें हैं । आपके ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति बोलती है । आपने 'मातृदेवो भव' की भावना चरितार्थ की है । आपके साथ माताजी रहती हैं ।

आप गुजराती भाषा के प्रखर साहित्यकार हैं । आपने गुजराती भाषा की महिमा बढ़ानेवाले अनेक ग्रंथरत्न दिये हैं । लगभग ८० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं और अभी भी आपका लेखन-कार्य जारी है । आप रससिद्ध कवि हैं । आपके 'गांधी गौरव', 'कृष्ण-रुक्मिणी' एवं 'रामायण दर्शन' काव्यग्रंथ गुजराती साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में अमर रह ऐसे सक्षम हैं । 'समर्पण' आपका रामायण पर आधारित उपन्यास है तो 'उत्तरपथ' महाभारत को उपन्यास के रूप में व्यक्त करनेवाला ग्रन्थ है । आपके 'प्रेमभक्ति की पगडंडी', 'साधना', 'आराधना', 'उपनिषद का अमृत', 'योगदर्शन', 'योगमीमांसा', आदि ग्रन्थ सुन्दर और उच्च कोटि के हैं । आपका सर्वोत्तम ग्रंथ आपकी आत्मकथा 'प्रकाश ना पंथे' है जिसमें आपने प्रकाश के पथ पर आगे बढ़ते हुए किस तरह परम कृपालु परमात्मा का साक्षात्कार किया, इस बात पर प्रकाश डाला है । भारत के ही नहीं, जगत के आध्यात्मिक इतिहास में इस आत्मकथा का स्थान मूर्धन्य रहेगा इसमें कोई सन्देह नहीं ।

आप योगी हैं, त्यागी हैं, चिन्तक हैं, दार्शनिक हैं, व्याख्याता एवं ग्रंथकार है । आप साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में त्रिवेणी संगम उपस्थित करनेवाले मनीषी हैं । आपके नानाविध व्यक्तित्व से कौन प्रभावित नहीं होगा ? आप में योगियों को योग मिलता है, कर्मशील को कर्म मिलता है, भक्तों को भक्ति मिलती है, काव्यरसिकों को काव्य मिलता है ।

रससिद्ध कविवरों के लिए संस्कृत में एक उक्ति अत्यधिक प्रचलित है । उसमें केवल एक ही शब्द का परिवर्तन करके यह कहना अनुचित न होगा कि

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः योगेश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥

- श्री शशीकान्त कोन्ट्राकटर

बी.ए., एम.ए. (हिन्दी)
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्रीमती. जे.पी.श्रोफ आर्टस कोलेज, वलसाड
पूर्व प्राध्यापक, एम.टी.बी.आर्टस कोलेज, सूरत
महात्मा श्री योगेश्वरजी कृत गुजराती पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद
१. गीता का संगीत २. गीता-दर्शन ३. ईश्वर-दर्शन ४. संत समागम ५. धर्म का साक्षात्कार

* * *

अनुक्रम

१. संसारमें रहकर आत्मिक उन्नति
२. भक्ति की साधना
३. नाम स्मरण
४. कुंडलिनी की जागृति
५. साकार साधना
६. ईश्वर की कृपा और ईश्वर-प्रेम
७. आत्मा का स्वरूप
८. प्राणायाम का अभ्यास
९. ईश्वर-दर्शन
१०. आत्मज्ञान और समाधि
११. मनको स्थिर करने की प्रक्रिया
१२. हिन्दू धर्म
१३. सन्तपुरुषों की निंदा
१४. ध्यान कैसे करें ?
१५. पुरुषार्थ
१६. काशी में मृत्यु
१७. ध्यान की पध्धति
१८. समाधि दशा की प्राप्ति
१९. साक्षात्कार के लिए गृहत्याग
२०. ब्रह्मचर्य का पालन
२१. समाधि और लय
२२. मूर्ति-पूजा
२३. विघ्न और प्रायश्चित
२४. ईश्वरदर्शन की तलब
२५. ध्यान में एकाग्रता
२६. ज्योतिष शाश्त्र के बारे में
२७. दर्शन कब हो ?
२८. पशुबलि
२९. प्रतिकूलता में से रास्ता
३०. स्थितप्रज्ञ के बारे में
३१. स्थितप्रज्ञ के लक्षण
३२. चमत्कार और धर्म
३३. सख्य भक्ति
३४. समाधि किसे कहते हैं ?
३५. ध्यान से सिध्धपुरुषों का दर्शन
३६. गुरुमंत्र बदल सकते हैं ?
३७. उपदेश का अनुसरण
३८. प्रकाश दर्शन
३९. ध्यान करते वक्त आसन
४०. प्लानचेन्ट
४१. सबकी मुक्ति में अपनी मुक्ति
४२. आत्मसाक्षात्कारी महापुरुषों का समागम
४३. खेचरी मुद्रा और शांभवी मुद्रा
४४. आत्मानुसंधान और भक्ति
४५. भक्ति की साधना
४६. भक्ति, ज्ञान एवं योग
४७. तीर्थयात्रा और एकान्तवास
४८. ज्ञान और भक्ति
४९. त्याग के बारे में
५०. साधना का मार्ग
५१. काम, क्रोध एवं वासना का त्याग
५२. आत्मा का स्थान
५३. बाह्याचार और मृत्यु का शोक
५४. मुक्ति के बारे में
५५. यज्ञोपवीत
५६. भक्ति के प्रति अभिगम
५७. कलियुग के बारे में
५८. सिद्धिओं का सदुपयोग
५९. आत्मविकास की साधना
६०. नादानुसंधान के बारे में
६१. गुरु के बारे में
६२. ईश्वर का दर्शन
६३. ईश्वरदर्शी संतपुरुष
६४. अश्रद्धा का उपाय

* * *

१. संसार में रहकर आत्मिक उन्नति

प्रश्न - आज सामान्य रूप से मानव को संसार के विरोधी वातावरण के बीच रहना पडता है । संसार की प्रतिकूल परिस्थितियों में साँस लेनी पडती है । ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में मरज़ी या नामरज़ी से जीना पडता है । ऐसी कठोर वास्तविकता का सामना करते हुए आत्मोन्नति के मार्ग में कैसे आगे बढ़ सकते हैं ? मैं अगर अपनी बात करूँ तो मैं प्रारंभ से ही आध्यात्मिक विषयों के प्रति तीव्र अभिरुचि रखता हूँ । ऐसे विषयों में सक्रिय एवं सविशेष अभिरुचि लेके उत्तरोत्तर आत्मोन्नति करने की मेरी अभिप्सा है, किन्तु जिस वातावरण में मैं रहता हूँ, वैसे वातावरणमें मैं कुछ भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकता ।

उत्तर - संसार के अमुक वर्ग के साधकों की समस्या ऐसी ही है, जिसको आपने अपने व्यक्तव्य में प्रकाशित किया है । फिर भी मैं एक बात की ओर इशारा करना चाहूँगा कि आपको अपनी आध्यात्मिक अभिरुचि के लिये न्यूनाधिक प्रयास करना ही होगा । यह सच है कि ज्यादातर मनुष्यों को संसार के विपरीत वातावरण में रहना पड़ता है । यह भी इतना ही सच है कि ऐसे माहौलमें रहकर भी रास्ते निकाल सकते हैं और वैसा करना ही चाहिए । जीवन की आध्यात्मिक उन्नति के महान शिखरों को सर करनेवाले महापुरुषों के जीवन को देखोगे तो पता चलेगा कि उनका मार्ग भी पहले से साफ़ नहीं था । उनको भी ऐसे विरोधी वातावरणमें ही बसना पड़ा था, इसलिए उससे भयभीत या नाहिंमत न बनकर उसमें से ही रास्ता निकालकर आगे बढें । प्रहलाद, नरसिंह महेता, मीरांबाई, दयानंद या विवेकानंद के जीवन क्या दिखाते हैं ?'

इसलिये वातावरण के विचार से हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना उचित नहीं है । आपका उत्साह, आपकी हिम्मत और आपका आत्मबल प्रबल है । उस आत्मबल को पहचान ले और उसे विकसित करें तभी आपका काम आसान हो जाएगा ।

प्रश्न - किन्तु उसको विकसित कैसे करें ?

उत्तर - यदि आपमें आध्यात्मिक विकास की सच्ची लगन या अभिप्सा होगी तो उसका विकास स्वतः होता रहेगा । मैं इतना ही सूचित करता हूँ कि माहौल को आप अधिक महत्व न दें । सभी प्रकार से अनुकूल वातावरण तो किसी भाग्यवान को ही मिलता है । इसलिये इसमें से रास्ता निकालने का विकल्प ही शेष रहता है । आप माहौल को सुधारने का प्रयास कर सकते हैं । इसके साथ ही साथ आत्मबल को विकसित करने के लिए महापुरुषों का समागम करते रहना चाहिए । इससे अद्‌भुत लाभ उपलब्ध होता है । ऐसे महापुरुषों का सत्संग या समागम सरल नहीं होता । आपको प्रकाश व प्रेरणा देनेवाले सद्‌ग्रंथो को पढ़ना चाहिए और उनका मनन करना चाहिए । तदुपरांत हररोज नियम से एक घण्टा या आधा घण्टा प्रार्थना, जप या ध्यान जैसी साधना में बिताना चाहिए । एक घण्टे या आधे घण्टे तक नियमित रूप से होनेवाली साधना लम्बे समय के बाद आपके भीतर शुभ संस्कारों का ऐसा दिव्य और प्रबल प्रवाह पैदा करेगी, जिसका सात्विक प्रभाव आप पर अवश्य पड़ेगा । ये सुसंस्कार ही आपको आगे बढ़ने में सहायक होंगे ।

प्रश्न - संसार में रहकर आत्मिक उन्नति संभवित है क्या ?

उत्तर - अवश्य हो सकती है इसमें कोई सन्देह नहीं । जिसको उन्नति करनी है उसको कोई रोक नहीं सकता । सिर्फ उनको हमेशा सावधान या जागृत रहकर पुरुषार्थ करना चाहिए । आज तक कितने ही ऐसे साधक हैं जो पुरुषार्थ करके सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं । आप भी यदि निश्चय करें तो क्यों नहीं कर सकते ?

* * *

२. भक्ति की साधना

प्रश्न - क्या भक्तिमार्ग की साधना गुरु के बिना नहीं हो सकती ? भक्ति की साधना में क्या गुरु की अनिवार्य आवश्यकता है ?

उत्तर - भक्ति की साधना में गुरु की अनिवार्य आवश्यकता है ऐसा नहीं समझना है । किसीको गुरु की आवश्यकता होती है तो किसीको नहीं होती । गुरु की आवश्यकता किसको है और किसको नहीं यह सभीको अपनी ओर से तय करना चाहिए । जो बाह्य मार्गदर्शन के बिना अपनी साधना में आगे बढ़ न सके उनको गुरु की आवश्यकता का स्वीकार करके प्रथम ऐसे गुरु की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए । किन्तु इससे उलटा, जो बाह्य मार्गदर्शन के बिना भी भक्तिमार्ग में आगे बढ़ सकते हैं उनको गुरु की राह न देखकर आगे बढ़ना चाहिए । गुरु की ज्यादा चिन्ता करने की जरूरत नहीं है । अपने अंतर में रहनेवाले ईश्वर के भीतर विश्वास रखके उस पर आधारित होकर इनकी सूचना या प्रेरणा पर आगे बढ़ सकते हैं । ऐसे देखा जाय तो भक्ति की साधना गुरु के बगैर भी हो सकती है । एक और भी बात है कि गुरु की कामना हो और गुरु न मिले तो वहाँ तक मानव को दो हाथ जोडकर बैठे रहना चाहिए और भक्तिमार्ग की साधना में प्रवेश न करना चाहिए ऐसा भी समझना नहीं है । गुरु के मार्गदर्शन के बिना भी मानव खुद अपनी रुचि के अनुसार भक्ति की साधना का प्रारंभ कर सकता है और ऐसी शुरुआत से किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता ।

प्रश्न - भक्तिमार्ग की साधनामें प्रधान महत्वपूर्ण साधन कौन कौन से हैं ?

उत्तर - भक्ति की साधना में बाह्य जो प्रधान महत्व के साधन है, इसमें जप, ध्यान, कथा-श्रवण, सेवा-पूजा और सत्संग का समावेश होता है और आंतरिक साधन में प्रधान रूप से प्रेम की गणना हो सकती है । बाह्य साधन मन को निर्मल करने में, एकाग्र करने में और भक्तिभाव से सभर करके ईश्वरपरायण करने में सहायता करते हैं । इनके सम्यक् अथवा समझपूर्ण अनुष्ठान से ईश्वर के लिये परम प्रेम का उदय होता है । भक्तिमार्ग में ईश्वर के लिये यह प्रेम ही सर्वस्व है और इसकी अभिवृद्धि की ओर जितना भी ध्यान दिया जाए उतना कम है । बाह्य साधन मन को निर्मल और निर्विकार बनाकर ईश्वर के लिए परम प्रेम को प्रकट करने और प्रबल बनाने के लिये है । प्रेम की प्रबलता होते ही भक्त का अन्तर्मन ईश्वर-दर्शन के लिये रोने लगता है, तड़पता है, और आकुल-व्याकुल होकर पुकार उठता है । हाँ, ऐसा प्रखर और प्रबल प्रेम किसी विरल भाग्यशाली के जीवन में प्रकट होता है । ऐसा प्रेम प्रकट होने के बाद ईश्वर-दर्शन बहुत दूर नहीं रहता । भक्त केवल बाह्य साधनों में खो जाए और आजीवन उसमें डूब न जाए इसका उसे विशेष ध्यान रखना है । तभी वह आगे बढ़कर साधना में अग्रेसर हो सकेगा ।

* * *

3. **नामस्मरण**

प्रश्न - नामजप या ईश्वर-स्मरण क्या निश्चित समय पर ही करना चाहिए ? कतिपय संतपुरुष कहते हैं कि सुबह जल्दी या शाम के समय होना चाहिए तो क्या दिन के दो भागों में ही ध्यान हो सकता है ?

उत्तर - व्यावहारिक लोगों को ज्यादातर समय नहीं मिलता तथा प्रभात या शाम का समय शान्त होता है अतएव उन्होंने दिनमें कम-से-कम दो बार शांत मन से ईश्वर-स्मरण करने का विधान किया है । कम से कम इतने समय के लिए तो वे अवकाश पाकर नामजप या ईश्वर-स्मरण करें । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर-स्मरण का वक्त इतना ही है और वह दिन में दो भागों में ही हो सकता है । ईश्वर-स्मरण सुबह में और शाम में दो बार करने का नियम उचित है किन्तु उसके बाद समय में बढ़ावा करना चाहिए । एक अवस्था ऐसी आनी चाहिए कि नामजप या स्मरण साँसोसाँस में हो सके । व्यवहारपरायण होने या न होने पर भी इसकी आदत डालनी चाहिए । इससे उस समय मानसिक रूप से ईश्वर-स्मरण हो सकता है । पहले ऐसी आदत डालनी चाहिए, बादमें उत्तरोत्तर आगे बढ़ना चाहिए । ऐसी आदत फिर स्वाभाविक हो जाती है । ईश्वरप्रेमी अनुभवी भक्तजन तो कहते हैं कि जीवन में ईश्वर-स्मरण अखंड अथवा निरंतर रूप से होना चाहिए । ऐसी एक भी क्षण न होनी चाहिए जिसमें ईश्वर-स्मरण न हो ।

आपके प्रथम प्रश्न के उत्तर में कहना है कि ईश्वर-स्मरण प्रारंभ में निश्चित समय पर करना आवश्यक है । ऐसी सिफारिश करने का मुख्य हेतु इतना ही है कि ईश्वर-स्मरण का महत्वपूर्ण कार्य नियम से हो सके । यदि निश्चित समय का नियम या आग्रह न रखा जाय तो उसका परिणाम क्या हो सकता है यह हमें मालूम है । मानव मनमानी करे, इसका मतलब है आज जप करे और कल न करे । हररोज करे फिर भी एक समय में न करे । आज सुबह करे, कल दोपहर में और परसों शामको और उसके बाद रातको करे और फिर ज़रा भी न करे । साधना के कार्य में ऐसी अव्यवस्था होती रहती है । ऐसी अव्यवस्था को रोकने के लिए साधक को अपना अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए । ऐसा अभ्यास निर्धारित समय पर निरंतर रुप से करना चाहिए । ऐसा नियमित रूप से होनेवाला अभ्यास मन को स्थिर या एकाग्र करने में सहायक होता है । निश्चित किये हुए समय पर मन अपने निर्धारित अभ्यास के लिए तैयार हो जाएगा और धीरे धीरे वह अभ्यास में दिलचस्पी लेगा और एकाग्र होना भी सीख लेगा । निश्चित समय के अभ्यास का यह लाभ कम नहीं है ।

प्रश्न - केवल जप करने से दर्शन हो सकता है क्या ?

उत्तर - हो सकता है, किन्तु कब संभव है जानते हैं आप ? नामजप करते करते हृदय भावविभोर हो जाए, द्रवित हो जाए और मा भगवती के प्रेम से परिप्लावित हो जाए या आतुर हो जाए तब नामजप करते हुए हृदय एक प्रकार की अनुपम भावना का अनुभव करता है । आँखमें से आँसू निकलते है, प्राण प्रेमातुर होकर पुकारने लगता है और रोम रोम में राग और रस का स्त्रोत उमड़ता है । यह अवस्था भक्त के लिए आशीर्वाद स्वरूप है । यह अवस्था सूर्योदय से पूर्व पूरब में उगनेवाली उषा की भाँति है परन्तु ऐसी अवस्था एक दो दिन या ज्यादा समय रहकर गायब हो जानेवाली नहीं होनी चाहिए । वह एक

समान या अखंड रहनी चाहिए । जहाँ तक भक्त को अपनी इच्छानुसार दर्शन का लाभ प्राप्त न हो, इस अवस्था को जतन करके बनाए रखना और बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए । यह प्रेममयी, अनुरागभरी अवस्था के फलस्वरूप भक्त माँ भगवती के दर्शन के लिए तड़पने लगे, रोने लगे, अपना सबकुछ निछावर करने तत्पर हो जाए । तत्पश्चात् ईश्वरदर्शन दूर नहीं रहेगा ।

प्रश्न - आपने जो संक्षिप्त गायत्रीमंत्र का वर्णन किया था, उसके जप का विधि क्या है ?

उत्तर - उस जप का कोई खास विधि नहीं है । दूसरे मंत्रो की तरह उसे भी स्नानादि से निवृत्त होकर जप सकते हैं । परंतु प्रधान बात यह है कि जप स्थिरता और एकाग्रता के साथ होना चाहिए, पूरी लगन के साथ होना चाहिए, श्रद्धा और प्रेम के साथ होना चाहिए । ज्यादातर मनुष्य विधिविधान की ओर अधिक ध्यान देते है । विधिविधान का महत्व भी अमुक मात्रा में है परंतु विधिविधान से ही जप का सर्वस्व नहीं है । जप का सर्वस्व तो ईश्वर-भक्ति, श्रद्धा एवं व्याकुलता है । इसका उद्भव होने पर जप अभीष्ट फल देता है ।

प्रश्न - कितने जप करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर - इसके लिये कोई नियत नियम नहीं है । सच्चा मार्ग तो यही है कि जहां तक अभीष्ट फल की प्राप्ति न हो वहाँ तक जप करते रहिए और उसके बाद भी उसे जारी रखिए । जप, जीवन की एक सहज क्रिया हो जानी चाहिए । हाँ, साक्षात्कार के बाद उसकी आवश्यकता नहीं रहेगी ।

* * *

४. कुंडलिनी की जागृति

प्रश्न - जिसकी कुंडलिनी जाग्रत हुई हो, उसको सांसारिक चीजवस्तुओं का मोह हो सकता है ?

उत्तर - कुंडलिनी जागृति एक वस्तु है और संसार की चीजवस्तुओं और विषयों का मोह अलग वस्तु है । जिस तरह आसन व प्राणायाम की प्रक्रिया है इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कुंडलिनी जागृति की प्रक्रिया है । इस प्रक्रिया का प्रभाव शरीर पर सदा के लिए पडता है परन्तु मन पर उसका प्रभाव होता है ऐसा नहीं कह सकते । मन पर उसका असर हो सकता है या नहीं भी हो सकता । इसका आधार उसके अभ्यासी पर होता है । आप जिस सांसारिक मोह की बात कर रहे हैं, उसका मूल मनमें होता है । इसका मतलब यह है कि मन को बदलने में या मन की शुद्धि साधने में न आए तो यह मोह नहीं मिट सकता । क्रिया या प्रक्रिया एक या दूसरे रूप में आगे बढ़ने में सहायक अवश्य होगी किन्तु मोह की निवृत्ति के लिए मन को सुधारना पडेगा या उसकी उदात्तता की ओर ध्यान देना पडेगा और ज्ञान की सहायता लेनी पडेगी ।

प्रश्न - संसार की वस्तुओं का मोह संपूर्ण रूप से क्या मिट सकता है ?

उत्तर - जब सदबुद्धि का सूर्योदय होगा तब संसार या उसके पदार्थों के सत्य स्वरूप का विचार करने के लिए या उनकी असारता अथवा क्षणभंगुरता और अस्थायी रसवृत्ति को भलीभांति समझ लेने पर उसकी ओर उपरामता, उदासीनता या वैराग्य होगा । उस वैराग्य की सहायता से उसका मोह अपने आप कम हो जाएगा । यदि थोडी बहुत मोहवृत्ति शेष रहेगी वह भी परमात्मा के प्रति उत्कट प्रेम होने से और इसके परिणामस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार होने पर पूर्णतया शांत होगी । परमात्मा के प्रति प्रेम उत्पन्न होने पर संसार का मोह स्वाभाविक रूप से ही मिट जाएगा ।

प्रश्न - इसके लिए और किसी दूसरे उपाय का आधार ले सकते हैं क्या ?

उत्तर - प्रार्थना का आधार ले सकते हैं । प्रार्थना में अत्यधिक शक्ति है परन्तु यह प्रार्थना होठों से नहीं परन्तु हृदय की गहराई में से निकलनी चाहिए । तभी वह अभिष्ट प्रभाव डाल सकेगी । ऐसी प्रार्थना से ईश्वर-कृपा हासिल करने में और अशुद्धियों का अन्त करने में सहायता मिलती है ।

प्रश्न - कुंडलिनी की जागृति के लिए योगसाधना में कौन कौन से साधन उपलब्ध है ?

उत्तर - शीर्षासन, सर्वांगासन, भस्त्रिका प्राणायाम तथा षण्मुखी मुद्रा - ये सब कुंडलिनी की जागृति में सहायक सिद्ध होते हैं । तदुपरांत निरंतर नामजप करने से भी उसकी जागृति हो सकती है । इन साधनों का अभ्यास प्रमाद का परित्याग करके नियमित रूप से करना चाहिए ।

* * *

५. साकार साधना

प्रश्न - साधक को अपनी साधना की शुरुआत साकार साधना यानि किसी मंत्र, मूर्ति, रूप या अन्य प्रतीकों को नज़र के सामने रखकर, उसका आलंबन लेकर करनी चाहिए या उसका आधार लिए बिना ? इन दोनों में से कौन-सी पध्धति उत्तम अथवा तो अधिक अनुकूल कह सकते हैं ?

उत्तर - उसका निर्णय आपको करना है । आपकी रुचि, वृत्ति, योग्यता या आपकी फितऱत ध्यान में रखकर जो उचित लगे उस साधन की पसंदगी अपने आत्मविकास के हेतु से करनी चाहिए और उससे प्रेम और विश्वास के साथ लगे रहने की आवश्यकता है । ऐसी पसंदगी के लिए आप स्वतंत्र है । अगर आप उसकी पसंदगी न कर सके तो किसी अनुभवी पुरुष की सलाह ले सकते हैं । किसी भी प्रकार के प्रतीक का आधार लिए बिना निराकार साधना के पथ पर आगे बढ़ने का कार्य प्रारंभिक साधक के लिए मुश्किल हो जाएगा । उसके मन की स्थिरता व एकाग्रता आसानी से नहीं हो सकती इसलिए मानव का स्वभाव अथवा तो उसकी निर्बलता को ध्यान में रखकर प्रारंभ में साकार साधना का आधार लेना उचित है । अथवा तो किसी मंत्र या रूप में मन को जोड़ना ऐसी सिफारिश की गई है । अर्थात् दोनों प्रकार की साधना उपयोगी है । आपके लिए कौन सी साधना पध्धति अनुकूल है उसका निर्णय आपको कर लेना चाहिए ।

प्रश्न - क्या यह बात सच है कि साकार साधना करनेवाले को निराकार साधना में प्रवेश करना चाहिए ? ऐसे प्रवेश के बिना साधना का विकास अधूरा रह जाता है, ऐसी मान्यता है । इसके बारे में आपका क्या मत है ?

उत्तर - यह कथन संपूर्णतया सच नहीं है अथवा यह रुचिभेद पर आधारित है ।

प्रश्न - कैसे ?

उत्तर - ईश्वर के साकार दर्शन करने की उम्मीद से प्रेरित होकर किसीने अगर साकार साधना का सहारा लिया हो तो उसे उसी साधन के साथ सदा के लिए जुट जाना चाहिए । साधना का आधार लेकर ईश्वर-प्रेम पैदा करने से, ईश्वर के प्रति लगन लगाने से तथा व्याकुलता जगाने से ईश्वर-दर्शन मुमकिन होगा । उसे निराकार साधना में प्रवेशित होने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि ऐसे प्रवेश से वह संतुष्ट नहीं होगा । जिसे निर्विकार समाधि की इच्छा हो उसके लिए ही प्रथम साकार साधना और तत्पश्चात् निराकार साधना का विधान किया गया है, अन्य के लिए नहीं ।

* * *

६. ईश्वर की कृपा और ईश्वर-प्रेम

प्रश्न - ईश्वर की कृपा कैसे हो ? इसकी अनुभूति के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर - ईश्वर की कृपा तो हर किसी व्यक्ति पर सदैव हो ही रही है । अगर इसका अनुभव न हो तो इसके लिए प्रामाणिक रूप से प्रयास करने चाहिए । आसमान में सूर्योदय हो चुका हो और उसकी किरणें वातावरण में सर्वत्र व्याप्त हो गई हो तब कोई मनुष्य घरके सभी खिडकी-दरवाजें बन्द करके घर में बन्दी बन जाए तो उसे उन किरणों का लाभ कैसे मिलेगा ? इन किरणों से वह खुद-बखुद जान-बुझकर महेरुम हो जाये । इन किरणों का लाभ उठाने के लिए घर के सभी खिड़की-दरवाजों को खोलकर उसे बाहर निकलना चाहिए । यही एकमात्र उपाय है । इसी तरह ईश्वरकृपा की कामनावाले पुरुष को भी अपने हृदय की खिड़कियों और द्वारों को ईश्वर की ओर खोल देना चाहिए ।

प्रश्न - ऐसा करने से क्या मतलब ?

उत्तर - इसका मतलब आप नहीं समझें ? हृदय को ईश्वराभिमुख करना, सांसारिक विषयों की ममता, आसक्ति तथा रसवृत्ति कम करके, उसमें ईश्वर के लिए पवित्र प्रेम जगाने का प्रयत्न करना । जो हृदय संसार के विषयों की ओर प्रवाहित होता हो उसे ईश्वर के स्मरण-मनन द्वारा ईश्वर की ओर बहता करना तथा ईश्वर की नियमित प्रार्थना का आधार लेना । इतना हो सके तो ईश्वर-कृपा का अनुभव प्राप्त करने में देर नहीं लगेगी । ईश्वर की कृपा अवश्य होगी ।

प्रश्न - संतपुरुष बार-बार उपदेश देते रहते हैं कि ईश्वर को प्रेम करो । ईश्वर से प्रेम करने का मतलब क्या समझें ?

उत्तर - ईश्वर से प्रेम करने का जो उपदेश दिया जाता है उसमें दूना अर्थ समाविष्ट है । इसका पहला मतलब ईश्वर का अधिकाधिक स्मरण करना, ध्यान करना तथा मन की वृत्तियाँ जो बाह्य जगत में दौडती हैं उनको अंतर्मुख करना या परमात्मा में जोड़ने का प्रयत्न करना । संसार के क्षणभंगुर विषयों के प्रति जो दिलचस्पी है, प्रीति तथा तड़पन है, इससे भी ज्यादा दिलचस्पी, आकर्षण, प्रेम तथा आतुरता ईश्वर के लिए उत्पन्न कर ईश्वर-साक्षात्कार के लिए तत्पर होना, प्रार्थना करना और इसी तरह समग्र जीवन को ईश्वरमय बना देना ।

प्रश्न - ईश्वर-प्रेम का दूसरा अर्थ क्या होता है ?

उत्तर - दूसरा अर्थ जरा अलग प्रकार का है । संसार ईश्वर का साकार स्वरूप है । इसके भिन्न भिन्न पदार्थों के रूप में ईश्वर स्वयं ही व्यक्त है, व्याप्त है, ऐसा समझकर, सब में ईश्वर की झांकी करने का प्रयास करते हुए सबको मन ही मन में चाहते रहना सीखना और जीवन को अन्य की सेवा के सर्वोत्तम कार्य में लगा देना - यही इसका दूसरा अर्थ है ।

अन्य में ईश्वरी प्रकाश का दर्शन कर जो अन्यको सहायक होता है, वह ईश्वर की भक्ति ही करता है और ऐसी प्रेमभक्ति के प्रभाव से मन निर्मल हो जाता है और ईश्वर की कृपा का लाभ सहज ही मिल जाता है ।

* * *

७. आत्मा का स्वरूप

प्रश्न - आत्मा का स्वरूप कैसा है ?

उत्तर - आत्मा जड़ नहीं अपितु चेतन है, यह तो सभी जानते हैं । तदुपरांत यह ज्योतिर्मय एवं विशुद्ध है । इसमें अज्ञानरूपी अंधकार बिलकुल नहीं है । यह अमृतमय एवं अमर है । सभी प्रकार के विकारों से रहित है, शांति स्वरूप है, मंगलता की मूर्ति तथा आनन्दमय है । उपनिषद में उसे अंगुष्ठमात्र अर्थात् अंगुष्ठ के आकार का एवं भूत, भावि और वर्तमान का ज्ञाता भी कहा गया है । परन्तु वह ऐसा ही है अथवा उतना ही है ऐसा कैसे कहा जाय ? सही रीति से कहा जाय तो आत्मा का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है अपितु सब इसके ही रूप हैं । जिनको साधना के द्वारा जैसा अनुभव हुआ है, उन्होंने उसी रूपका उल्लेख किया है । ये सभी उल्लेख अपने रूप से सत्य हैं । विशाल सागर का कोई एक रूप थोडा ही है ? यह तो अरूपी है । फिर भी यदि आप एक दिशा में खड़े रहकर तसवीर लें और कहे कि यह सागर की तसवीर है तो आपका यह कथन सत्य ही कहा जाएगा । इसी तरह दूसरी, तीसरी या चौथी दिशामें से तसवीर खींची जाय तो वे तसवीरें भिन्न भिन्न होते हुए भी सागर की ही मानी जायेगी । फिर भी हम ऐसा दावा थोडे ही कर सकते हैं कि इन तसवीरों में समग्र सागर का संपूर्ण स्वरूप समाहित हो गया है ? ऐसे दावे को कौन स्वीकारेगा ? ऐसी तसवीरें तो अनेक ली जा सकती है । आत्मा के बारे में भी यही समझना है । इसके स्वरूप का अनेक रीतियों से वर्णन किया गया है फिर भी यह अनंत होने से यह अनेक गुना महान, विराट व वर्णनातीत है ऐसा अवश्य कह सकते हैं ।

प्रश्न - ईश्वर-कृपा के लिये क्या एकान्त आवश्यक है ?

उत्तर - एकान्तवास यदि समझपूर्वक, विकास के निर्धारित कार्यक्रम के साथ, जरूरी चित्तशुद्धि की भूमिका हासिल करने के पश्चात् अनिवार्य साधन के रूप में किया जाए तो ईश्वर की कृपा की प्राप्ति में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है । इसका आश्रय विवेक एवं वैराग्य से सम्पन्न साधकों के लिए अत्यन्त आशिर्वादरूप साबित होता है ।

* * *

८. प्राणायाम का अभ्यास

प्रश्न - प्राणायम सभी के लिए आवश्यक है क्या ?

उत्तर - हर किसी के लिए आवश्यक है ऐसा कैसे कह सकते हैं ? हाँ, पवित्र, सेवामय एवं प्रभुमय जीवन सबके लिए आवश्यक है, यह सत्य है बाकी प्राणायाम का अभ्यास सबके लिए अनिवार्य नहीं है । जिसे उसकी जरूरत महसूस हो, वह उसका लाभ उठा सकता है । यह लाभदायक अवश्य है, साधना में सहायक भी है किन्तु साधना का सार-सर्वस्व नहीं है । ऐसा समझकर उसे आवश्यक माननेवाले साधक को भी उससे आगे बढ़ना चाहिए ।

प्रश्न - प्राणायाम के अभ्यास के बिना साधना हो सकती है क्या?

उत्तर - प्राणायाम के अभ्यास के बिना भी साधना हो सकती है । प्राणायाम आध्यात्मिक साधना में अनिवार्य है ऐसा नहीं है । इसका आधार आपकी रुचि पर है । जिसे उसमें दिलचस्पी है वह यह अभ्यास कर सकता है । अलबत्ता इसका उपयोग युवावस्था में और अनुभवी पथप्रदर्शक की सूचनानुसार करना चाहिए नहीं तो व्याधि एवं मुसीबत पैदा होने का भय रहता है ।

प्रश्न - प्राणायाम का प्रारंभ किस तरह करना चाहिए ?

उत्तर - शुरुआत नाडीशोधन प्राणायाम से करनी चाहिए । इसे भस्त्रिका प्राणायाम भी कहा जाता है । इससे प्राणवायु की विशुद्धि होने के अलावा अन्य कई महत्वपूर्ण सहायता मिलती है । सूर्योदय से पूर्व खुली और ताज़ी हवा में बैठकर उसका अभ्यास कर सकते हैं । शाम को भी कर सकते हैं । परन्तु वर्षाऋतु में उसका अभ्यास न करना चाहिए । आरंभ के लिये शरद एवं वसंत ऋतु विशेष अनुकूल है ।

प्रश्न - सामान्य प्राणायाम कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर - सामान्य प्राणायम की विधि इस प्रकार है - पद्मासन या सुखासन में सीधे बैठकर सबसे प्रथम दाहिने नाक से दो बार ॐ या राम (या अन्य कोई मंत्र) जपते हुए हौले से श्वास अंदर लें । बाद में आठ बार मंत्र जपने तक दोनों नाक बंद करके श्वास को भीतर रोक लें । अन्त में बाँये नाक को खोलकर चार बार मन्त्र जपते हुए श्वास को धीरे से बाहर निकालें । अब उसी नाक से दो बार मन्त्र पढ़कर श्वास को भीतर लें । फिर दोनों नाक बन्द करके आठ बार मंत्रजाप करते हुए श्वास को रोके रक्खें । तत्पश्चात् चार बार मंत्र बोलकर दाहिने नाक से श्वास को बाहर निकालें । फिर कुछ क्षण आराम करें । इस तरह एक प्राणायाम पूरा होता है । श्वास अन्दर लेने की क्रियाको पूरक, श्वास रोकने की क्रियाको कुंभक एवं श्वास निकालने की क्रियाको रेचक कहते हैं । पूरक की अपेक्षा कुंभक चार गुना तथा रेचक दुगना करना चाहिए, ऐसा स्वाभाविक नियम है । इसी नियम को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त पध्धति अनुसार चार या पाँच प्राणायाम कर सकते हैं । प्राणायाम करते समय छोटा या बड़ा किसी भी मंत्र का आधार ले सकते हैं ।

प्रश्न - प्राणायाम से क्या क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर - प्राणायाम से खास तौर से प्राण की शुद्धि होती है । श्वास, नाक और गले के अवयव मज़बूत होते हैं और शरीर में नया और ताज़ा वायु का संचार होता है । तदुपरांत रक्ताभिसरण की क्रिया में भी सहायता मिलती है । लेकिन ये सब तो स्थुल लाभ है । सूक्ष्म लाभ तो मन की स्थिरता व एकाग्रता का है । प्राण और मन में गहरा सम्बन्ध है अतएव प्राणायाम का असर मन पर अवश्य पड़ता है । इसकी मदद से मन की चंचलता दूर होती है । मन स्थिर होता है और शांति मिलती है । मन के विकार धीरे धीरे दूर होते हैं, और अंततोगत्वा मिट जाते हैं ।

प्रश्न - क्या यह सच है कि प्राणायाम करनेवाले को आहार का ध्यान रखना चाहिए ?

उत्तर - हाँ, यह सच है । प्राणायाम करनेवाले को आहार एवं विहार का भी ध्यान रखना चाहिए अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तथा अत्यधिक निद्रा से छुटकारा पाना चाहिए । आहार में विशेषतः खाटे, खारे और तीखे व्यजंनो का त्याग करना चाहिए । रात को देरी से खाने की आदत छोड़ देनी चाहिए । प्राणायाम के अभ्यास में आगे बढ़ने पर भी थोडा समय सादा भोजन अथवा तो दूध और फल का सेवन करना पड़ता है । इसका मतलब यह हुआ कि प्राणायाम के साधक को जीभ पर विजय प्राप्त करना चाहिए और स्वाद पर भी विजयी होना चाहिए ।

* * *

९. ईश्वर-दर्शन

प्रश्न - ईश्वर-दर्शन और आत्मदर्शन में क्या अंतर है ?

उत्तर - अंतर केवल समझ का है । भक्ति के द्वारा प्रेम का उद्भव होने से ईश्वर का साक्षात् दर्शन होता है उसे ईश्वर-दर्शन कहते हैं । ध्यानादि द्वारा शरीर में जो आत्मा का साक्षात्कार होता है उसे आत्मदर्शन कहा जाता है । वस्तु एक ही है परन्तु उसके प्रकारानुसार उसके नाम भिन्न भिन्न हैं ।

प्रश्न - ईश्वर-दर्शन कब होता है ?

उत्तर - इसके लिए कोई निश्चित समय या मुहूर्त नहीं है । जब भी आप योग्य बने तब ईश्वर-दर्शन हो सकता है । ईश्वर के लिए आपके दिलमें अत्यधिक प्रेम प्रकट होना चाहिए । ईश्वर के बिना आपको न चैन हो, न करार ऐसी अवस्था होनी चाहिए ।

ईसा मसीह के पास एक बार एक आदमी आया । उसने ईश्वर-दर्शन के बारे में पूछा । ईसा उसे एक सागर के किनारे ले गये और उसे पानी में डुबकी लगाने के लिए कहा ।

उस आदमीने डुबकी लगाई तब ईसाने उसकी गरदन पकड़ रखी ।

वह आदमी बहुत गभरा गया और उसने कहा - 'अब छोड दीजिए अन्यथा मैं मर जाऊंगा ।'

ईसा मसीहने उसे छोड़ दिया और कहा - 'पानी में आपको क्या अनुभव हुआ ?'

उस आदमीने कहा कि 'अभी प्राण छूट जाएंगे ऐसा लगता था ।'

ईसाने उत्तर दिया, 'ऐसी भावना या अवस्था जब ईश्वर के लिए होगी तब ईश्वर अवश्य मिलेगा ।'

ईश्वर-दर्शन के लिए पानी में डुबकी लगाकर दुःखी या परेशान होने की जरूरत नहीं है परंतु संसार की ममता व आसक्ति छोड़कर ईश्वर की भूख जगानी है । आजकल के मनुष्यों को तनिक भी महेनत नहीं करनी है । उन्हें संसार के भोगविलास में डूबे रहना है और साथ ही आसानी से, बिना परिश्रम किये ईश्वर मिल जाए तो प्राप्त करना है । अब आप ही सोचिए इस तरह ईश्वर-मिलन कैसे होगा ? ईश्वर के लिए तहे दिलसे रोना-तड़पना पड़ता है । रोम रोम और तन मन से उसे पुकारना पड़ता है । तब जाके ईश्वर-दर्शन की योग्यता प्राप्त हुई ऐसा माना जाए । ऐसा होने पर ईश्वर आपसे दूर नहीं रह सकता ।

* * *

१०. आत्मज्ञान और समाधि

प्रश्न - आत्मज्ञान और समाधि दोनों एक है या भिन्न ? आत्मज्ञान एवं समाधि में क्या अन्तर है ? क्या आत्मज्ञान से समाधि हो सकती है ?

उत्तर - आत्मज्ञान और समाधि दोनों एक नहीं है परन्तु भिन्न है । आत्मज्ञान आत्मा के विषय में ज्ञान है और समाधि योग-साधना की सहायता से उत्पन्न विकास की एक भूमिका या अवस्था है । योगसाधना में आठ अंग हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि । इसमें समाधि आठवाँ एवं आखिरी अंग है । ध्यान के दीर्घ समय के गहन अध्ययन के बाद ही समाधिदशा की प्राप्ति होती है । जब कि आत्मज्ञान यानी आत्मा के ज्ञान से समाधि नहीं मिलती । मगर समाधि प्राप्त करने में सहायता अवश्य मिलती है । यूँ भी कह सकते हैं कि अधिकाधिक सिद्धि प्राप्त होने से या समाधिदशा की दृठता होने से आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है । इस तरह से देखा जाए तो आत्मज्ञान समाधि का संतान है । समाधि साधन है और आत्मज्ञान साध्य है । सच्ची व संपूर्ण शांति समाधि और एकमात्र समाधि द्वारा नहीं मिल सकती किन्तु आत्मज्ञान की सहायता से ही उपलब्ध हो सकेगी । जीवन की सिद्धि आत्मज्ञान से ही सम्भव है ।

प्रश्न - आत्मज्ञान तो शास्त्रों के चिंतनमनन के द्वारा भी मिल सकता है न ?

उत्तर - शास्त्रों के चिंतनमनन से जो मिलता है उसे आत्मज्ञान न कहकर शास्त्रज्ञान कहना ही उचित है । शास्त्रों के चिंतनमनन से यदि आत्मा का ज्ञान मिलता है ऐसा मान ले तो भी ऐसे आत्मज्ञान से शांति नहीं मिल सकती । इससे भेदभाव या अहंभाव की निवृत्ति नहीं होती और इससे जीवन का श्रेय भी नहीं होता । उदाहरणार्थ रसोई का ज्ञान होने से रसोई के बारे में जानकारी मिलती है पर इससे भूख नहीं मिटती । भूख तो उसका आस्वाद करने से ही मिटती है । इसी तरह शास्त्रों की सहायता से प्राप्त आत्मज्ञान से भ्रान्ति नहीं मिटती । भ्रान्ति मिटाने का और शांति प्रदान करने का काम तो अनुभवज्ञान ही करता है । ऐसा अनुभवज्ञान प्राप्त करने हेतु दीर्घ समय तक उत्साहपूर्वक साधना करनी पड़ती है । इस साधना के परिणामस्वरूप साधक को आत्मदर्शन होता है और आत्मा के ऐसे प्रत्यक्ष दर्शन के परिणामस्वरूप आत्मा का प्रत्यक्ष, अनुभवजन्य निस्संदेह सुस्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है । ऐसा आत्मज्ञान किसी ऐरे गैरे नत्थू खैरे को नहीं मिलता । उसके लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है । ऐसा आत्मज्ञान ही सब प्रकार से सुखकारक, शांतिप्रदायक एवं तारक हो सकता है । ईसीलिए उसे प्राप्त करनेका ही निश्चय करना चाहिए । शाश्त्रज्ञान प्राप्त करके रुकना नहीं बल्कि आगे बढ़ना चाहिए ।

प्रश्न - बिना समाधि के चल सकता हैं या नहीं ?

उत्तर - इतने सोच-विचार के बाद आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाना चाहिए । आत्मा के अनुभवजन्य ज्ञान के लिए समाधि एक महत्वपूर्ण एवं रामबाण साधन है । अतएव इसके बिना नहीं चल सकता । समाधि की सिद्धि के लिए ध्यान के अभ्यास में जुट जाइए और बातों को छोडकर अनुभूति के प्रदेश में प्रवेश करने का प्रयास कीजिए ।

* * *

११. मन को स्थिर करने की प्रक्रिया

प्रश्न - नामजप करते समय एकाग्रता नहीं होती इसका क्या कारण है ? उस वक्त भांतिभांति के और भिन्न भिन्न प्रकार के संकल्प, भाव एवं विचार मन में पैदा होते हैं तथा मन के पर्दे पर विभिन्न प्रकार के दृश्य उत्पन्न होते हैं । इनका अन्त कैसे करें ?

उत्तर - आपके अन्तरमन में अनेक प्रकार के भाव, विचार, संकल्प और रसवृत्तियों के संस्कार प्रकट या अप्रकट रूपसे पडे होते हैं । जब आप उनको स्थिर करने का प्रयत्न करते हैं तब वे प्रबल रूप में बाहर आते हैं और आपके सामने चील की तरह मंडराते रहते हैं । इन संस्कारों एवं भावों को निर्मल बनाने की कोशिश कीजिए और इसके साथ ही जो विघातक भाव, विचार या संस्कार हैं उन्हें विवेकशक्ति की सहायता लेकर जड़-मूल से नष्ट कीजिए । उनके सूक्ष्म अंकुर भी आपके अन्तरमन में रहने न पाए इसका ध्यान रखें । मतलब यह कि मन को स्थिर करने की साधना के साथ-साथ मनको शुद्ध बनाने का प्रयास करते रहें । इससे एकाग्रता के मंगल कार्य में सहायता मिलेगी । अलबत्ता यह काम तनिक कष्टसाध्य है, लंबा और विकट भी है परन्तु ऐसा सोचकर मायूस होने की, नाहिंमत होने की या हतोत्साह हो जानेकी आवश्यकता नहीं है । आत्मविश्वास, आत्मनिरीक्षण एवं धीरज और हिंमत के साथ आगे बढ़ने से मनकी एकाग्रता अवश्य सिद्ध होगी । नामजप या ध्यान का अभ्यास करते वक्त मन बाह्य चिंतनमनन छोड़कर आत्माभिमुख या अंतर्मुख बन जाएगा । उस वक्त अद्भूत आनंदकी अनुभूति होगी ।

प्रश्न - नामजप करते वक्त मन की स्थिरता के लिए अन्य कोई उपयोगी प्रक्रिया आप बता सकते हैं ?

उत्तर - दो प्रकार की प्रक्रिया सूचित कर सकता हूँ । एक तो नामजप करते वक्त या ध्यान करते समय श्वासोच्छवास की गति का निरीक्षण करें । श्वास को अंदर लेते समय एक जप करें और बाहर निकालते वक्त दूसरा जप करें । जप यदि लम्बा हो तो उसे एकाधिक श्वास में भी कर सकते हैं । दूसरी प्रक्रिया, जिसका जप किया जाए उसके स्वरूप का स्मरण या ध्यान करने की है । आरंभ में उस रूप को मूर्ति या चित्र के रूप में सम्मुख रखें । उसे एक नज़र देखते हुए खुली आँखों से जप या ध्यान का आश्रय लें । ये दोनों प्रक्रिया एकाग्रता में सहायक सिद्ध होगी । आप उसे आज़मा सकते हैं ।

* * *

१२. हिन्दू धर्म

प्रश्न - हिन्दू धर्म वैसे तो सनातन, महान, विशाल और एकेश्वरवादी कहलाता है किंतु गहराई से सोचा जाय तो उसमें एकवाक्यता नहीं दिखाई देती । हिन्दु धर्म में जो भिन्न भिन्न पूजा के विधान हैं, भिन्न भिन्न मंत्र, ध्यान के प्रतीक, पुस्तक या अनेक देव-देवियाँ है ये सब क्या एकेश्वरवाद के सिद्धांत के अनुकूल हैं ? क्या ये हिन्दु धर्म के दोष नहीं है ? इसमें हिन्दु धर्म की विशालता दिखाई देती है या संकीर्णता ? महानता दिखाई देती है या अल्पता ? मुझे तो लगता है कि हिन्दु धर्म पिछड़ा हुआ है ।

उत्तर - वास्तव में यह बात नहीं है । जिस कारण से आप हिन्दू धर्म को पिछडा हुआ मानते हैं, जिनमें आपको हिन्दु धर्म की अल्पता या संकीर्णता दिखाई पड़ती है, उसके बारे में शांति से सोच-विचार करने पर और उसका गहराई से अभ्यास करने पर आपको हिन्दुधर्म की महानता एवं विशेषता की प्रतीति होगी । यह भी मालूम होगा कि एकेश्वरवाद का सिद्धांत इसमें ओतप्रोत हो गया है । तभी आपको हिन्दुधर्म के प्रति आदर उत्पन्न होगा इसमें कोई सन्देह नहीं ।

प्रश्न - लेकिन कैसे ?

उत्तर - हिन्दु धर्म एक महान वैज्ञानिक धर्म है । मानव-मन और उसकी प्रकृति के गहन अध्ययन के पश्चात उसकी रचना हुई है । इस धर्म के आचार्य मानव की भिन्न रुचि तथा प्रकृति की विविधता को भली भाँति जानते थे । मनुष्य की भावना इच्छा, पसंदगी एक समान नहीं होती परंतु भिन्न भिन्न होती है, ओर उसकी आकांक्षाओं एवं उसके विकास की पध्धतियाँ भी अलग अलग हैं इस हकीकत को वे अच्छी तरह जानते थे । इसीलिए वे मानते थें कि सभी मनुष्यों के लिए पूजा सेवा के एक से प्रतीक या साधन नहीं हो सकते । रुचि भिन्न है अतएव विकास के साधन, विकास के मार्ग भिन्न भिन्न हो सकते हैं । इस विषय में ऐसा लश्करी कानून नहीं बनाया जा सकता जो सब पर एक रूप से लागू हो । इसकी कोई जरूरत नहीं । सब लोग ईश्वर का साक्षात्कार करे और इस तरह अपने जीवन का कल्याण करे यह बात उपयुक्त है किंतु उसके लिए एकसे साधनों का आग्रह रखना व्यर्थ है । इससे तो संघर्ष पैदा होगा और अभीष्ट फल की प्राप्ति भी नहीं होगी ।

हम चाहते हैं कि हर कोई आगे बढ़े परंतु अमुक पध्धति का आधार लेकर ही आगे बढ़े ऐसा नहीं । इसके पीछे हिन्दुधर्म के महान प्रणेताओं का गहन मनोवैज्ञानिक अभ्यास निहित है । इसीलिए उस धर्म में विभिन्न प्रतीक, पुस्तकें, साधना के मार्ग एवं देवी-देवता हैं । अपनी रुचि या प्रकृति के अनुसार परंदगी करने में हर कोई आज़ाद है । ये सब विभिन्नताएँ होने पर भी वह एक ईश्वर का उपदेश देता है और ईश्वर के साक्षात्कार का सन्देश देता है । दुनिया की बाह्य विभिन्नता में रहकर अंतर्निहित परमात्मा की झाँकी करना सिखाता है । देवी देवता को विराट विभु के प्रतीक मानते हैं । इस तरह यदि आप समझेंगे तो आपकी शंका दूर होगी ।

* * *

१३. संतपुरुषों की निंदा

प्रश्न - कभी कभी ऐसा देखने में आता है कि किसी जिज्ञासु भक्त या साधक को किसी संतुपुरुष पर बहुत भरोसा या अत्यधिक प्रेम होता है । वह उनको पूज्य या ईश्वरतुल्य मानते हैं किन्तु कुछ समय के पश्चात् किसी प्रकार के कारण बिना वह उनके साथ सम्बन्ध तोड़ देता है और उनकी टीका या निंदा करता है । उस वक्त दूसरों को उसका यह रूप बड़ा विचित्र लगता है । ऐसे विरोधी बर्ताव या परिवर्तन का कारण क्या है ?

उत्तर - विरोधी बर्ताव या परिवर्तन का कारण ढूँढना मुश्किल है । यों तो कहने के लिए हम कहते हैं, कि यह बात तो ऋणानुबंध अथवा संस्कार की है । जब ऋणानुबंध पूरा होता है तब व्यक्तियों का आपस का सम्बन्ध टूट जाता है और इसके पीछे कोई बाह्य कारण भी नहीं दिखाई देता । तो कभी इस विषय में किन्हीं साधारण या असाधारण कारण भी होते है । संतपुरुष के साथ अगर किसी दुन्यवी लालसा, वासना या स्वार्थ कारण हो तो आखिरकार लालसा, वासना या स्वार्थ की पूर्ति हो जाने पर मन अश्रद्धालु बन जाता है, बदल जाता है और जिसके साथ प्यार हुआ हो, उसका नाता तोड देता हैं । कभी संतपुरुष को सच्चे रूप में न समझ सकने के कारण नासमझ पैदा होती है । लेकिन संतपुरुष में प्रेम एवं विश्वास पर्याप्त अनुभव एवं सोच विचार के बाद पैदा हुआ हो तो वह चिरस्थायी रहेगा, उसमें कभी कमी महसूस न होगी । बिना सोच-विचार के केवल संतपुरुष की शक्ति या सिद्धि से चकित होकर सम्बन्ध शुरु हुआ होगा तो वह चिरकाल तक नहीं टिकेगा । कुछ भी हो, किंतु एक बात अवश्य याद रखें कि संतपुरुष के साथ सम्बन्ध ही न रखें तो कोई बात नहीं किंतु उसकी निंदा कभी मत कीजिए । निंदा करने में किसी तरह मानवता नहीं है ।

प्रश्न - कोई व्यक्ति यदि विरोधी बन जाय और उनकी निंदा करे तो उस अवस्था में संतपुरुष का मन कैसा रहता है ?

उत्तर - सच्चे संतपुरुष का मन सदैव शांत एवं स्वस्थ बना रहता है । विरोधी एवं निंदक के प्रति भी उनके हृदय में स्नेह एवं सद्भाव रहता है । वे उसके कल्याण की कामना करते हैं । सभी परिस्थितियों मे ईश्वर की मर्जी समझकर ईश्वर में मन को तल्लीन करके, उसीकी लीला का दर्शन करके वे अलिप्त रहते हैं ।

* * *

१४. ध्यान कैसे करें ?

प्रश्न - ध्यान कैसे किया जाए ?

उत्तर - एक जगह शांतिपूर्वक अनुकूल आसन पर बैठकर मन में उत्पन्न होते हुए संकल्प विकल्प या विचारों को शांत करके और वृत्तियों को अन्तर्मुख करके बैठे रहना वह ध्यान का एक प्रकार है । ध्यान में बैठते समय भाँति-भाँति के और विविध प्रकार के विचार उठते है तथा मन दोड़ धूप करता है । शायद इसीलिए मन को स्थिर करने के रामबाण साधन के रूप में किसी मंत्र या स्वरूप के साथ ध्यान करने की सलाह दी जाती है । इसे साकार ध्यान कहा जाता है । प्रारंभ में किसी अनुभवी पथप्रदर्शक के सलाह अनुसार वैसा साकार ध्यान करने से आगे के ध्यान में सहायता उपलब्ध होती है ।

प्रश्न - ईश्वर हमारी नजरों के सामने है और कृपा-वृष्टि कर रहे हैं ऐसा मानकर ध्यान करना चाहिए या वे हमारे हृदय के भीतर विद्यमान हैं ऐसा मानकर ध्यान करना चाहिए ?

उत्तर - ध्यान करने की अनेक पध्धतियाँ हैं, जिनका उल्लेख मैंने कई बार किया है किन्तु उन पध्धतियों का विभाजन मुख्यतया दो विभागों में कर सकते हैं १) सगुण ध्यान और २) निर्गुण ध्यान । ईश्वर के किसी मनपसंद रूप में मन को स्थिर करने का प्रयत्न किया जाय वह सगुण ध्यान है । किसी भी प्रकार का चिंतन या मनन किये बिना, गीता के छठे अध्याय में कहा गया है उस प्रकार ध्यान में बैठकर मन को धीर धीरे शांत करने की कोशीश की जाय वह निर्गुण ध्यान है । अथवा तो आत्मस्वरूप का चिंतन किया जाय या जप का आधार लेकर मन को एकाग्र या शांत बनाने की चेष्टा की जाय वह भी निर्गुण ध्यान ही है । इसमें से किसी एक का आश्रय ग्रहण कर ध्यान की साधना में आगे बढ़ सकते हैं । पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन या सुखासन में से कोई भी एक आसन ध्यान के लिए अनुकूल है । इसमें से अनुकूल आसन पसंद करके ध्यान करना चाहिए । आपकी भावना को लक्ष्य में लिया जाय तो यह अभिप्राय देना अनुचित न होगा कि ईश्वर हृदय में स्थित है और उनकी कृपा निरंतर बरस रही है ऐसा मानकर ध्यान करने से आपको विशेष लाभ होगा ।

प्रश्न - स्वयं को किस तरह पहचान सकते हैं ? आत्मा की पहचान का मतलब क्या है ?

उत्तर - आत्मा की पहचान का मानी है अपने शरीर में स्थित चैतन्य सत्ता की अनुभूति करना, उसका दर्शन करना । उसको स्वरूप का दर्शन भी कहते हैं । ध्यान करने से ऐसा संभवित होता है । ध्यान करते करते जब मन शांत हो जाता है तब आत्मतत्त्व का अनुभव होता है ।

प्रश्न - मोक्ष का स्वरूप कैसा है ?

उत्तर - मोक्ष का स्वरूप बड़ा विशाल है । स्वरूप दर्शन से आत्मा के अपरोक्ष ज्ञान का उदय होता है और इससे भेदभाव मिट जाते हैं, अशांति दूर हो जाती है । मोक्ष का मुख्य स्वरूप वही है । इसकी अनुभूति के लिए, सब प्रकार के व्यसनों, दुर्गुणों, दुर्विचारों एवं दुष्कर्मों से मुक्ति पानी चाहिए । लौकिक ममता, अहंता एवं आसक्ति से छुटकारा पाना चाहिए ।

* * *

१५. पुरुषार्थ

प्रश्न - तुलसी कृत 'रामचरितमानस' में सुग्रीव श्रीराम को कहता है कि राज्यसुख प्राप्त होने पर मैं आलसी बनकर आपको भूल गया यह मेरी सबसे बडी भूल थी । इस जगत में जो काम, क्रोध, मद, मोह एवं अहंकार रूपी दूषण हैं उनको कोई विरल भाग्यवान पुरुष ही, यदि आपकी कृपा हो तो, जीत सकता है । तो क्या बिना ईश्वर की कृपा के उन दोषों को जीत ही नहीं सकते ? मनुष्य के व्यक्तिगत पुरुषार्थ का क्या कोई मूल्य नहीं है ?

उत्तर - मनुष्य के व्यक्तिगत स्वतंत्र पुरुषार्थ का कोई मूल्य ही नहीं है ऐसा तो किसी भी धर्मशास्त्र में नहीं लिखा गया और रामायण के रचयिता तुलसीदास भी ऐसा कहाँ कहते हैं ? रामायण में कुछ जगह पे वे जीवन की सार्थकता के लिए पुरुषार्थ करने का आदेश देते हैं । वे उस प्रसिद्ध चोपाई में इसी बात को प्रतिबिंबित करते हुए कहते हैं - 'बड़े भाग मानुष तन पावा ।' अर्थात् मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से ही मिलता है । ऐसे साधनों के धाम और मोक्ष के द्वार समान मानवशरीर को प्राप्त कर जो केवल संसार के भोगोंपभोगों में ही डूबा रहता है और मुक्ति, शांति व परमात्मा को पाने का प्रयत्न नहीं करता वह दुःखी होता है, बाद में पछताता है और काल को, कर्म को और ईश्वर को दोषित मानता रहता है । उनके इस कथन में भी मनुष्य को अपने आत्मविश्वास या श्रेय के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए ऐसा सूचित किया गया है । उसे आलसी बनकर दो हाथ जोड़कर निठल्ले बनकर बैठे रहना चाहिए ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया ।

प्रश्न - तो फिर सुग्रीव के मुख में जो शब्द रखे गये हैं, उनका क्या मतलब है ? आप जो कहते हैं वह बात यदि सच्ची है तो सुग्रीव के ये शब्द क्या विरोधाभासी नहीं लगते ? ईश्वर की कृपा पर ही संपूर्ण रूप से आधार रखने का वे नहीं सिखाते ?

उत्तर - मैं ऐसा नहीं मानता । सुग्रीव के शब्द उसकी फितरत के अनुसार ही बोले गये है । इन शब्दों में पूर्णतया नम्रता निहित है । जीवन में जो कुछ अच्छा होता है या हासिल होता है उसका यश सिर्फ ईश्वर को ही दिया जाए और केवल ईश्वर की कृपा से ही वह होता है या प्राप्त होता है ऐसा विश्वास रखने में कुछ कम निरभिमानता या नम्रता की आवश्यकता नहीं पड़ती । महापुरुष जब अपनी सिद्धि या सफलता के बारे में उल्लेख करने का वक्त आता है तब ऐसी ही भाषा में लिखते या बोलते होते हैं । दूसरे भी ऐसा लिखें या बोलें यह अभिनंदनीय है परन्तु इसका उलटा अर्थ या भावार्थ लेकर दीन, हीन, आलसी और नाचीज़ बनने लगे और इसमें गौरव का अनुभव करने लगे तो ऐसी पध्धति किसीको भी उपयोगी सिद्ध नहीं होगी । ईश्वर की कृपा हम पर है ही और अधिक से अधिक होगी ही ऐसा मानकर अपने दूषणों को मिटाने का पुरुषार्थ करें तो न्यूनाधिक रूप में अवश्य सफल व कामयाब होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं ।

* * *

१६. काशी में मृत्यु

प्रश्न - काशी में मृत्यु होने से मुक्ति मिलती है - इस शाश्त्र-वचन को आप मानते हैं ?

उत्तर - मानता हूँ परन्तु इसे सिर्फ शब्दार्थ में नहीं अपितु उसको भावार्थ के साथ स्वीकार करने में मानता हूँ ।

प्रश्न - भावार्थ के साथ स्वीकार करने का मतलब ? क्या आपको शास्त्र-वचन में श्रध्धा नहीं है ?

उत्तर - इसमें मुझे श्रध्धा नहीं है ऐसा तो कैसे हो सकता है ? सत्यतः देखा जाए तो यह प्रश्न ही नहीं है । शास्त्रवचन का वाच्यार्थ नहीं भावार्थ ग्रहण करना है । हर साल और हर दिन काशी में कितने जीव या आदमी जन्म लेते हैं इसलिए उनको मुक्ति मिलती है यह मानना गलत होगा । केवल काशीनगरी में रहकर मृत्यु प्राप्त होने से उनको मुक्ति नहीं मिल सकती । काशी में रहनेवाले सभी व्यक्ति धर्मात्मा नहीं होते । इसी तरह केवल वहाँ बसने से उनको मुक्ति कैसे मिले ? वे सब ईश्वरपरायण जीवन नहीं जीते । उनमें अहंता, ममता, रागद्वेष, आसक्ति, कामना व लालसा ऐसा सबकुछ होता है । उनसे प्रेरित हो वे कुछ प्रकार के कुकर्म भी करते हैं । ऐसे कुकर्मी लोग यदि काशी में मरे तो उनकी मुक्ति क्या हो सकती है ? मुझे नहीं लगता कि उनकी मुक्ति हो क्योंकि जिसका चारित्र्य शुद्ध न हो, जो सद्गुणी, सात्विक स्वभाव का और ईश्वर-परायण न हो और अनीति, अन्याय, अधर्म या कुकर्म में से जिसका मन प्रतिनिवृत्त नहीं हुआ हो उसे मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती । मुक्ति की प्राप्ति - यह तो जीवन विकास का एक स्वाभाविक क्रम है । शुद्ध हृदय के साधक ही उसका लाभ ले सकता है । मुक्ति इतनी सस्ती नहीं है कि काशी जैसे किसी धाम में रहने या मरने मात्र से ही मिल जाए । ना, ऐसी भ्रांति में मत रहना ।

प्रश्न - तो फिर काशी में रहने से मुक्ति मिलती है एसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर - जैसे कि मैंने पहले बताया कि उसका केवल भावार्थ लेना है । उस कथनको भावार्थ सहित समझने से आपको कोई सन्देह नहीं रहेगा । जिस ज़माने में यह शास्त्रवचन लिखा गया उस समय काशी आत्मज्ञान का महान केन्द्र था । अध्यात्म विद्या का प्रचार व प्रसार अधिक प्रमाण में था । तदुपरांत भाँति-भाँति के दिग्गज, मेधावी, प्रशांत महापुरुष आज की अपेक्षा अधिक प्रमाण में वहाँ निवास करते थे अतएव उनके समागम या सत्संग का आसानी से लाभ मिलता था । फलतः वहाँ निवास करनेवाले और विशेष रूप में जिज्ञासु लोगों के जीवन में परिवर्तन होता था । उन्हें देवदुर्लभ लाभ मिलता था और वे ज्ञान को प्राप्त कर अपने जीवन को शुद्ध, पूर्ण, मुक्त और ईश्वरमय बनाने के लिए तत्पर होते थे । इसी तरह उनके जीवन में मूलभूत क्रांति होती थी और जीवनभर आत्मिक विकास प्राप्त कर ऐसी उच्च अवस्था में मृत्यु होने से मुक्ति उनके लिए सहज होती थी । इस तरह बुध्धियुक्त सहानुभूति के साथ इस कथन को समझना हैं । जीवन को उच्च बनाने से आज या भविष्य में, किसीको भी, सिर्फ काशी में नहीं, अन्य किसी भी स्थान में बसने या मरने से मुक्ति मिल सकती है । काशी के प्रेमियों ने सिर्फ काशी के लिए ऐसा लिखा है बस ।

प्रश्न - स्थान की महिमा को आप नहीं मानते क्या ?

उत्तर - मानता हूँ । स्थान की अपनी महिमा अवश्य होती है । इसका इन्कार कैसे कर सकते हैं ? किन्तु सर्वोत्तम स्थान में रहकर भी कुछ न करे और आलसी बनकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे तो उसका विकास कैसे होगा ? वह मुक्ति को कैसे प्राप्त कर सकेगा ? मनुष्य को किसी भी स्थान में रहकर कम से कम आवश्यक विकास तो करना ही चाहिए तभी कोई महत्वपूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकेगी ।

* * *

१७. ध्यान की पद्धति

प्रश्न - ध्यान की प्रक्रिया कैसे करें, इसके बारे में कुछ बतायेंगे ?

उत्तर - ध्यान की प्रक्रिया के लिए शिवपुराण में आवश्यक सूचनाएँ दी गयी है ।

भगवान शंकरने दुर्वासा मुनि से कहा - हे मुनि, मुक्ति के मंदिर के द्वार को खोल देनेवाले ध्यानयोग की विधि मैं तुम्हें सुनाता हूँ, उसे ध्यान से सुनिए । योग की रुचिवाले पुरुष को सबसे पहले गुरुको प्रणाम करते हुए प्रार्थना या मंत्र का आधार लेके प्राणायाम करना चाहिए । पद्मासन, स्वस्तिकासन, वज्रासन या अन्य किसी आसन का सहारा लेकर स्थिर रूप से बैठना चाहिए और उसे मन एवं प्राण को शांत करने का प्रयास करना चाहिए । इन्द्रियों में मन प्रधान है तथा प्रेरणा प्रदान करनेवाला है इसलिए उसे बाह्य विषयों में जाने से रोकना चाहिए । प्राण एवं मन को ब्रह्मरंध्र या भ्रू-मध्य में जोड़कर ॐ का उच्चारण करके अंतःकरण को आत्मा में धारण करना चाहिए ।

ध्यानयोग के साधक को निरोगी रहना चाहिए और अल्पाहार करना चाहिए, क्रोध का त्याग करना चाहिए और आत्मा के चिंतन-मनन में दिलचस्पी रखनी चाहिए । वैराग्य को दृढ करने के लिये आत्मा और शरीर के नित्यानित्य का विचार करना चाहिए । शुक्र और रक्त से उत्पन्न होनेवाला, मज्जा, मेद और अस्थि से भरा हुआ, नाडी समूह से घिरा हुआ, नवद्वारयुक्त, मलमूत्र की बदबूवाला, जन्म-मरण व व्याधि से ग्रसित शरीर अनित्य है । इसलिए उसमें प्रीति और आसक्ति न करनी चाहिए ।

(शिवपुराण अध्याय ३५)

प्रश्न - ध्यान करते वक्त जिस परमात्मा का ध्यान किया जाता है उससे हम भिन्न हैं ऐसा मानना चाहिए या अभिन्न हैं यह समझना चाहिए ?

उत्तर - परमात्मा से अगर आप संपूर्ण भिन्नता रखते हों तो आप उनका ध्यान नहीं कर सकते । उस अवस्था में ध्यान की साधना करने का कोई अर्थ या प्रयोजन नहीं है । ईश्वर-साक्षात्कार के लिए तो ध्यान किया जाता है । उस परमात्मा के साथ आप अभेद एवं एकता की अनुभूति करते हैं फिर ध्यान करने का अर्थ क्या रहेगा ? अतएव हकीकत यह है कि जिस परमात्मा का ध्यान किया जाता है उसके साथ ज्ञान की दृष्टि से मूलभूत एकता है ऐसा मानिए । साथ ही व्यावहारिक रूप में अथवा वास्तविक रूप में उस परमात्मा के साथ भिन्नता का स्वीकार भी कीजिए । ध्यान मार्ग का साधक वर्तमान भेदभाव का स्वीकार करके ही उसको मिटाने के लिए प्रयत्न करता है और उसमें आगे बढ़ता है । उस भेदभाव को मिटाने पर ही और अभेद सिध्ध करने से ही उसको शांति मिलती है । अतएव मेरा अपना मत तो यही है कि परमात्मा के साथ भिन्नता एवं अभिन्नता दोनों का ख़्याल साधक को रखना चाहिए ।

प्रश्न - ध्यान में मूर्ति या मंत्र का आधार लेना आवश्यक है क्या ?

उत्तर - इस प्रश्न का उत्तर ध्यान करने की योग्यता या भूमिका पर अवलंबित है । यदि मूर्ति या मंत्र का आधार लिए बिना मन को स्थिर या शांत बनाया जा सकता है तो उसका आधार लेने की कोई जरूरत नहीं रहती । किन्तु अधिकांश साधक किसी भी प्रकार के आधार के बिना मन को स्थिर नहीं कर सकते इसीलिए आरंभ में किसी मूर्ति या मंत्र का सहारा लेकर आगे बढ़ना उनके लिए जरूरी बन जाता है

। फिर भी जिंदगीभर उस आधार की जरूरत नहीं बनी रहती । अन्ततः तो साधक को सभी प्रकार के बाह्य आलंबनों से मुक्ति प्राप्त करनी है और उसे आत्मानंद में तल्लीन हो जाना सीखना है । वह अवस्था प्रयत्नसाध्य है ।

* * *

१८. समाधि दशा की प्राप्ति

प्रश्न - समाधि की प्राप्ति का रामबाण इलाज क्या है ?

उत्तर - रामबाण इलाज ध्यान है । ध्यान में नियमित रूप से एवं लम्बे अरसे तक उत्साहपूर्वक बैठने से अंत में मन का लय हो जाता है या मन नितांत शांत हो जाता है । उस अवस्था को समाधि दशा कहते हैं । मंत्र-जप से भी उस दशा की प्राप्ति हो सकती है किन्तु मंत्र-जप करते वक्त जब मन अन्य सबकुछ भूलकर ध्यान में रत होकर प्रवाहित होकर बहने लगे तभी उस दशा की अनुभूति होती है । इस दृष्टि से सोचने से यह कहना अनुचित नहीं है कि प्रधान मार्ग ध्यान का मार्ग ही है ।

प्रश्न - समाधि में साधक को शरीर का होश रहता है ?

उत्तर - यदि साधक को शरीर का होश रहता हो तो उस अवस्था को समाधि नहीं कहा जायेगा । समाधि की समुन्नत अवस्था में शरीर का होश बिलकुल नहीं रहता इतना ही नहीं काल तथा अपने आसपास के वातावरण का भी भान नहीं रहता । मन उन सबसे परे या अतीत हो जाता है । जहाँ तक शरीर का, काल का, एवं वातावरण का होश रहता हो वहाँ तक उस अवस्था को समाधि-दशा नहीं अपितु ध्यान-दशा कहते हैं । ध्यान एवं समाधि में क्या अंतर है यह समझने से समाधि के रहस्य को आप भलीभाँति जान जाएँगें ।

प्रश्न - समाधि-दशा में कम-से-कम कितने समय तक रहना चाहिए ?

उत्तर - समाधि दशा में कितने समय तक रहना चाहिए उसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं है । किंतु एक बात विशेष रूप में याद रखिए कि समाधि दशा में मन कहाँ तक स्थिति करता है वह उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना कि मन उस अवस्था में क्या अनुभव करता है और उस दशामें से जागृत होने पर उसका स्वरूप कैसा रहता है । समाधि की अवस्था का मूल्य समय पर से अंकित नहीं होता परंतु उस अवस्था के गुण-धर्म से अंकित होता है इसे हमेशा याद रखें ।

* * *

१९. साक्षात्कार के लिए गृहत्याग

प्रश्न - ईश्वर-साक्षात्कार के लिए मैं गृहत्याग करना चाहती हूँ तो इस विषयमें आपकी क्या राय है ?

उत्तर - आप ईश्वर-साक्षात्कार करने के हेतु गृहत्याग करना चाहते हैं और इस विषयमें मेरी राय चाहते हैं इससे पता चलता है कि आप अपने विचार या निर्णय के बारे में दृढ़ नहीं है । ईश्वर-साक्षात्कार की तीव्र प्यास अभी आपको नहीं लगी अन्यथा आप मेरे या किसीके अभिप्राय की अपेक्षा नहीं करते । जिसे ईश्वर-साक्षात्कार की सच्ची लगन लगी हो और जो उसके लिए आकुल-व्याकुल होता हो, वह गृहत्याग के लिए किसीकी सलाह नहीं लेता, वह तो कब गृहत्याग करता है उसकी किसीको खबर भी नहीं पड़ती । गृहत्याग करके जब वह बाहर निकल जाता है, तभी पता चलता है कि उसने घर छोड़ दिया । मेरे प्रति आपका अनुराग और विश्वास है इसी कारण आपने मेरा परामर्श माँगना उचित समझा है । अतः मुझे कहने दो कि आप गृहत्याग करें यह मैं नहीं चाहता । साम्प्रत परिस्थितियों में आप घर पर रहकर ही साधना करें और उसमें तरक्की करें यही बहेतर होगा । यही मेरी राय है ।

प्रश्न - आप मेरे गृहत्याग के लिए क्यों मना करते हैं ?

उत्तर - इसलिए कि आपको बाहर की दुनिया की परिस्थिति कैसी विकृत, विकट और नाजुक है इसका अन्दाज़ा और अनुभव नहीं है । आप एक महिला है इसलिए आपकी जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है तथा आपके प्रश्न को अलग रूप से सोचना पड़ेगा । साम्प्रत समाज में आप स्वैरविहार करके इच्छानुसार साधना कर सके ऐसी अनुकूल परिस्थिति ही नहीं है । महिलाओं के लिए ऐसे विश्वसनीय आश्रम भी नहीं है । आपका वैराग्य भी कच्चा है, भूमिका भी कच्ची है । साधना के पथ में आपकी प्रगति भी अत्यल्प है ।

प्रश्न - तो क्या मैं आगे बढ़ने का विचार छोड़ दूँ और मायूस होकर घरमें बैठी रहूँ ?

उत्तर - मायूस होकर घरमें बैठे रहने का कोई कारण नहीं है । आशा बनाए रखो । आशा के बिना जीवन निकम्मा और नीरस है । आगे बढ़ने के विचार का त्याग करने की जरूरत नहीं है । यह विचार भले ही रहे । गृहत्याग करने से ही आगे बढ सकते हैं ऐसे आग्रह को छोड दो । यह आग्रह अनुचित और निरर्थक है । घर से डरो मत, घर अनेक तरह से उपयोगी है । इसीमें तुम्हारी सलामती है । इसमें रहकर वर्तमान समय में तुम्हारे वैराग्यभाव को, तुम्हारी भक्ति को, हृदय-शुद्धि को और ज्ञान को दृढ़ करो । नियमित प्रार्थना और साधना की सहायता से ईश्वर के अधिक से अधिक निकट पहूँचने की कोशिश करो । संसार के मोह और उसकी ममता से दूर रहो । जीवन की आवश्यकताओं को कम कर दो । जीवन को संयमी एवं सादगीपूर्ण बनाओ । दूसरों को उपयोगी बनो । इसी तरह जीओगे तो घर आपके लिए सहायक सिद्ध होगा और तुम्हारे जीवन में त्याग की समस्या नहीं पैदा होगी । यदि किसी कारण से त्याग होगा तो भी उसे शोभित कर सकोगे और वह आपको सहायक होगा । घरको सुधारने से अथवा घरमें रहकर उन्नति करने से घर ही नंदनवन जैसा बढ़िया होगा और उसका त्याग करने की आवश्यकता शायद ही

रहेगी । आवश्यक तैयारी विना किया गया त्याग साधक नहीं अपितु बाधक होता है यह सदैव याद रखो और व्यर्थ साहस मत करो ।

* * *

२०. ब्रह्मचर्य पालन

प्रश्न - श्री रामकृष्ण परमहंसने कहा है कि यदि कोई मनुष्य बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करें तो उसमें ऐसी प्रचंड शक्ति उत्पन्न होती है, जिससे वह ईश्वर के मार्ग को आसानी से जान सकता है तो वह शक्ति कैसी होगी उसको समझा सकेंगे ?

उत्तर - श्री रामकृष्ण परमहंस जैसे महापुरुष ने जो कहा है उसमें सन्देह करने का कोई सबब नहीं दीखता । दीर्घ समय के अनवरत ब्रह्मचर्य पालन से कैसी विराट शक्ति का निर्माण होता है उसकी कल्पना क्या आप नहीं कर सकते ? वह शक्ति संयम एवं पवित्रता की होती है । ब्रह्मचर्य का अच्छी तरह पालन करने से शरीर तो निरोगी व स्वस्थ रहता ही है परन्तु साथ में मन भी मजबूत, निर्मल, स्थिर एवं शांत होता है । ऐसा मन ध्यान तथा जप जैसी आत्मविकास की अंतरंग साधना में आसानी से एकाग्र हो जाता है और इसके कारण ईश्वर को पहचान भी लेता है । तदुपरांत ब्रह्मचर्य पालन से जो ओजस पैदा होता है उससे ज्ञानविज्ञान के गहन रहस्यों का चिंतनमनन करने की शक्ति बढ़ती है और एक प्रकार का निराला, असाधारण आत्मबल का आविर्भाव होता है । महर्षि दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, रामतीर्थ और महात्मा गांधी ऐसे आत्मबल के मूर्तिमन्त स्वरूप थे । कोई मनुष्य जीवन के अन्तिम श्वास तक विलासी जीवन जीता रहा हो और ईश्वर को भी पहचान सका हो ऐसा आज तक तो नहीं हुआ । ईश्वर को पहचानने के लिए संयम या ब्रह्मचर्यपालन आवश्यक है ।

प्रश्न - संसार में रहकर, घरआंगन में अनेक प्रकार की मुसीबतों का सामना करते हुए ईश्वर-साक्षात्कार करना और जीवन को सार्थक और धन्य बनाना कैसे मुमकिन हो सकेगा ?

उत्तर - ईश्वर-साक्षात्कार करके जीवन को धन्य करनेवाले कतिपय साधक आपकी तरह संसार में, घरआंगन में विविध प्रकार की मुश्किलों और विरोधी वातावरण के बीच ही निवास करते थे । उनके विकास का पथ सरल नहीं था फिर भी वे आगे बढ़ सके थे, इसी तरह आप भी आगे बढ़ सकते हैं । हाँ, साधना के लिए आवश्यक बातों का ध्यान रखकर चलें तो आपके विकास का कठिन मार्ग भी आसन हो जाएगा इसमें कोई सन्देह नहीं ।

प्रश्न - ईश्वर-साक्षात्कार के लिए प्रमुख साधन कौन कौन से हैं ?

उत्तर - तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में लिखा है कि 'जा के जा पर सत्य सनेहु, सो तेहि मिलत न कछु संदेहु' अर्थात् जिसको जिस पर सच्चा स्नेह होता है वह उसे अवश्य मिलता है, यह निस्संदेह है । तुलसीदास के इस कथन का उल्लेख मैं यहाँ इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि इसमें आपके प्रश्न का उत्तर समाविष्ट है । यह कथन ईश्वर-साक्षात्कार के बारे में भी लागु होता है । ईश्वर-साक्षात्कार का एक प्रधान साधन ईश्वर के प्रति सच्चा प्यार या स्नेह है । इसके बिना ईश्वर का साक्षात्कार मुश्किल है । कितने ही जप किये जाए, तप किये जाय, ज्ञान के ग्रंथो का आश्रय लिया जाए, कितना भी देवदर्शन, कथाश्रवण या तीर्थाटन किया जाए फिर भी यदि ईश्वर के लिए पवित्र, प्रामाणिक या प्रखर प्रेम प्रकट न हो और ईश्वरदर्शन की उत्कट भूख न जगे तो ईश्वर साक्षात्कार कभी न होगा । प्रेम सबके मूल में है । भिन्न भिन्न साधनों का आश्रय लेके उसे जगाने की और बढ़ाने की आवश्यकता है । यह प्रेम जब अपनी

चरमसीमा पर पहुँचेगा तब ईश्वर-दर्शन के लिए अंतर अधीर होगा, अंग-प्रत्यंग में ईश्वर का नाद लगेगा, प्राण ईश्वर के लिए पुकारेगा और आगे का काम आसान हो जाएगा ।

* * *

२१. समाधि और लय

प्रश्न - कुछेक योगीजन जमीन में खड्डा खुदवाकर दट जाते हैं अथवा पूर्वनिश्चित दिन तक समाधि लेते है तो क्या ऐसी समाधि लेना संभवित है ? अगर है तो कैसे ?

उत्तर - ऐसी समाधि लेना मुमकिन है । प्राणायाम के अभ्यास में अग्रसर योगी अपनी इच्छानुसार दीर्घ समय तक प्राणवायु का निरोध करके जमीन में बैठ सकता है या समाधि ले सकता है । हाँ इसके लिए गहन अभ्यास आवश्यक है । अभ्यास में तनिक भी गलती हो या त्रुटि रह जाए तो मृत्यु को गले लगाना पड़ता है और उस वक्त कतिपय साधकों के शरीर में बदबु भी पैदा होती है । कतिपय बनावटी साधु गुफा में या गड्डे में हवा लेने का साधन भी रखते हैं और लोगों को छलने के लिए समाधि लेते हैं और वहाँ आराम भी फरमाते हैं । उनके शिष्य उनके आवश्यक खानेपीने का प्रबंध भी करते हैं और इस तरह उनकी देखभाल भी करते हैं । फिर भी यदि वे ठीक ढंग से समाधि लेते हैं ऐसा माना जाए तो भी ऐसी समाधि लोगों के लिए मनोरंजन या प्रदर्शन का विषय न बननी चाहिए ऐसा मुझे लगता है । समाधि चाहे जमीन के भीतरकी हो या बाहरकी, वैयक्तिक विकास की वस्तु है । वह प्रदर्शन और उसके द्वारा धनप्राप्ति या प्रतिष्ठा की लालसा का विषय न बननी चाहिए । यह आत्मदर्शन या आत्मशांति के उद्देश्य से प्रेरित होकर एकान्त में सिर्फ ईश्वर की उपस्थिति में ही हो यह जरूरी है ।

प्रश्न - ऐसी समाधि क्या उपयोगी हो सकती है ?

उत्तर - समाधि की प्रत्यक्ष अनुभूति की कामनावाले मनुष्यों को ऐसी समाधि संतुष्ट करे और श्रध्धावान बनाए ऐसा हो सकता है किंतु यह समाधि आत्मज्ञान या आत्मानुभव से वंचित जड़ समाधि होगी । समाधि से जागने के पश्चात भी उसके अन्दर यदि अहंता, ममता, कामक्रोध, रागद्वेष, आसक्ति या भेदभाव हमेशा रहें और समाधि के फलस्वरूप मन के मैल मिट जाने पर परमात्मा के प्रति प्रेम प्रकट न हो तो यह समाधि शांति की प्राप्ति नहीं करवा सकती । इससे शायद सिद्धियाँ हासिल होगी परंतु बंधनों की निवृत्ति या जीवन का कल्याण नहीं हो सकेगा । अगर साधना मानव को सच्चे अर्थ में मानव न बनाए और परमात्मा के पास न पहुँचाए तो कैसी भी असामान्य या दंग कर देनेवाली हो यह किस कामकी ?

प्रश्न - लय और समाधि क्या एक ही है या अलग अलग ?

उत्तर - दोनों एक ही है । दोनों में शरीर का होश चला जाता है और सुख की अनुभूति होती है । दोनों के नाम भिन्न है परन्तु उसका सार एक ही है ।

प्रश्न - लय एवं आत्मदर्शन अथवा आत्मसाक्षात्कार क्या एक ही है या उसमें कोई अंतर है ?

उत्तर - इन दोनों में अंतर है और इसे स्वानुभव के अलावा नहीं समझ सकते । लय की अवस्था बहुत ही उच्च एवं मूल्यवान है फिर भी हरेक प्रकार के लय में साधक को आत्मसाक्षात्कार नहीं होता । आत्मा की अनुभूति करानेवाला लय तो किसी धन्य क्षण में हो जाता है । फिर उसे जागृत अवस्था में आने के पश्चात भी जड़-चेतन सभी में परमात्मा की अनुभूति होने लगती है । ऐसा विशिष्ट प्रकार का

लय जीवन को कृतार्थ करनेवाला होता है । उसे निर्विकल्प समाधि भी कहा जाता है अथवा तो अप्रज्ञात समाधि के नाम से भी जाना जाता है ।

* * *

२२. मूर्तिपूजा

प्रश्न - क्या मूर्तिपूजा आवश्यक है ? इस बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर - मूर्तिपूजा सबके लिए आवश्यक नहीं है, फिर भी संसार में भिन्न भिन्न रुचिवाले लोग रहते हैं । इसमें से कुछेक व्यक्तिओं को अपने निजी विकास के लिए इसकी आवश्यकता महसूस होती हो तो वे उसका आधार ले सकते हैं । इसमें हमें क्यों एतराज होगा ?

प्रश्न - मूर्तिपूजा का आधार लेने से सर्वव्यापक, सर्वदेशीय परमात्मा की अनुभूति में क्या कोई बाधा नहीं उपस्थित होगी ?

उत्तर - मुझे तो ऐसा नहीं लगता । परमात्मा की अनुभूति आसानी से हो इसलिए प्रारंभ में एक प्रतीक के रूप में उसका आधार लिया जाता है । इस पध्धति के अनुसार मूर्ति में निहित ईश्वर की परमसत्ता का साक्षात्कार करके अन्ततः संसार के सभी पदार्थों में उसका दर्शन करना होता है । मूर्तिपूजा का आश्रय ग्रहण करने से सर्वव्यापक एवं सार्वत्रिक परमात्मा की अनुभूति में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती । मूर्तिपूजा की प्राचीन पध्धति में कुछ बुराइयाँ है ऐसा लगे तो उनका विरोध अवश्य कीजिए, किन्तु मूर्ति या मूर्तिपूजा का विरोध करना उपयुक्त नहीं है ।

प्रश्न - जीवात्मा और परमात्मा में क्या अंतर है ?

उत्तर - जीवात्मा और परमात्मा में मूलभूत रूप में या तत्त्वतः कोई भेद नहीं है । दोनों के बीच एकता है । जिस तरह सागर और उसकी लहर में कोई अन्तर नहीं है उसी तरह जिन तत्त्वों से सागर बना है उन्हीं तत्त्वों से लहरों की उत्पत्ति हुई है । जो भेद नज़र आता है वह उपर उपर से या व्यवहारिक रूप से है । इसी दृष्टि से देखने से यह कहा जाता है कि जीव शिव का ही अंश है । वह अल्पज्ञ एवं अल्प शक्तिमान है । वह अज्ञान में डुबा हुआ और कर्म के बंधन से बंधा हुआ है इसलिए वह सुख-दुःख, उत्थान-पतन तथा बंधन एवं मोक्ष का अनुभव करता है । वह अपने मूल स्वरूप को जान ले इतनी ही देर है । उसे यह ऐतबार होगा कि उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है ।

* * *

२३. विघ्न और प्रायश्चित

प्रश्न - आत्मोन्नति की साधना में आगे बढ़नेवाले साधक को बाहर के कोई तत्त्व, व्यक्ति या वस्तु बाधारूप बनते हैं क्या ? उसके मार्ग में उसे आगे बढ़ने से रोकने या उसका पतन करने के इरादे से देवता विघ्न डालते हैं क्या ?

उत्तर - पुराने धर्मग्रंथो में ऐसी बातें, कथाएँ आती हैं, जैसे कि कोई तपस्वी स्वर्गादिकी प्राप्ति के लिए तप करता हो तो स्वर्ग का राजा इन्द्र अपने आधिपत्य की रक्षार्थ इसके तपको भंग करने के लिए अप्सराएँ भेजता या अन्य प्रयास करता था । इससे कितने ही तपस्वियों का तपोभंग भी होता था । लालसी साधकों के विषय में यह बात सत्य होगी फिर भी जो सिर्फ आत्मोन्नति की कामना रखता है और परमात्मा का साक्षात्कार ही जिसके जीवन का मकसद है, उनको ऐसी बातों से ड़रने की आवश्यकता नहीं है । वे तो शुभ कार्य में प्रवृत्त हुए हैं फिर देवतागण उनके रास्ते में रोड़े क्यों डालेंगे ? इससे विपरीत देवता एवं सिद्ध प्रसन्न होंगे और उनके सहायक होने की कोशिश करेंगे । बौद्ध एवं ईसाई धर्म में जैसे मार और शैतान के बारे में कहा गया है वैसे हिंदु धर्म में माया का उल्लेख हुआ है परन्तु साधक की साधना में बाधक होनेवाले शैतान, मार या माया विशेषतः मनुष्य के भीतर ही है और वे ही विघ्न डालते रहते हैं । मनुष्य की अपनी अतृप्त कामना, लालसा, तृष्णा और वासना ही उसे चंचल बनाती हैं, चलायमान कर देती हैं और प्रलोभनों और भयस्थानों का शिकार बना देती हैं । उनकी विशुध्धि करने की और उनके चंगुल से मुक्त होने की जरूरत है । इतना होगा तो फिर साधक को किसीसे भी डरने की नौबत नहीं रहेगी । बाह्य तत्वों का ज़ोर भी उसके आगे नहीं चलेगा ।

बाह्य तत्त्व शुभ हेतुवाले साधक के मार्ग में भी विघ्न डालते हैं ऐसी मान्यता मानवसमाज के लिए अत्यधिक हानिकारक एवं अमंगल है । उसके कारण सतत भय, अचौकसाई अथवा असलामत वातावरण पैदा होता है । ऐसी मान्यता साधकों को मायूस व नाहिम्मत बना देगी इसलिए उसे प्रोत्साहन मत दीजिए । एक ओर अपनी सारी शक्ति समेट के साधक साधना करे वहाँ उसके सख्त परिश्रम को नाकामियाब बनाने दैवी या बाह्य तत्त्व तैयार रहे तो किसका उद्धार हो सकेगा भला ?

प्रश्न - शास्त्रों में पाप, कुकर्म या अपराध के निवारणार्थ भिन्न भिन्न प्रायश्चित कहे गये हैं । ऐसे प्रायश्चित के परिणामस्वरूप पाप निवारण होता है क्या यह बात सच है ?

उत्तर - अगर आप शास्त्र में विश्वास करते हैं तो इसमें सन्देह करने की क्या बात है ? प्रत्येक पाप अपराध या कुकर्म के निवारण का एक या दूसरा इलाज होता ही है और शास्त्रोंने यदि इन उपायों का प्रतिपादन किया है तो इसमें क्या ग़लत है ? तप, व्रत, मंत्रजप, अनुष्ठान, उपवास, तीर्थसेवन तथा प्रार्थना और शास्त्रश्रवण जैसे विभिन्न उपाय उसके लिए ही बताए गये हैं । पाप या अपराध निवारण की भावना से अलग अलग प्रायश्चितों का श्रध्धापूर्वक आधार लेने से अवश्य लाभ होता है ।

प्रश्न - प्रायश्चित के पश्चात मन की अवस्था कैसी होनी चाहिए ?

उत्तर - बिलकुल निर्मल और हलकी । प्रायश्चित के पश्चात मन व हृदय का सभी बोझ उतर गया हो ऐसे लगना चाहिए । दिलमें से डंख निकल जाना चाहिए । बरसात के दिनों में बादल गरजकर बरसते

हैं बाद में आकाश कितना स्वच्छ हो जाता है ! इसी तरह पाप, अपराध या कुकर्म के पश्चाताप या प्रायश्चित के बाद मन बिलकुल सात्विक और स्वच्छ बन जाना चाहिए ।

एक दूसरी हकीकत भी ध्यान रखने योग्य है । अपराध या दोष का यथार्थ रूप से प्रायश्चित तब होता है जब मन में पाप, अपराध या कुकर्म करने की वृत्ति ही पैदा न हो, उसका अंकुर भी न रहें । सच्चा प्रायश्चित मनकी संपूर्ण शुद्धि में निहित है । यह बात विशेषतः याद रखनी चाहिए कि मन की संपूर्ण शुध्धि होने पर उसे बुराई में दिलचस्पी नहीं रहती, तथा वह उसके प्रति नहीं भागता । एक बार हुआ अपराध दूसरी बार न हो यही सही मायने में प्रायश्चित है ।

* * *

२४. ईश्वर-दर्शन की तलब

प्रश्न - प्रभु के दर्शन जब नहीं होते तो कभी कभी ऐसा होता है कि चलो आत्महत्या कर ले । ऐसा करने से ईश्वर का दर्शन होता है क्या ?

उत्तर - नहीं, यह विचार ग़लत है । प्रभु का दर्शन तो नित्य निरंतर सतत भजन करते रहने से ही मिलेगा । ऐसा निरंतर भजन करने से मनका मैल मिट जाएगा और हृदय विशुद्ध हो जाएगा । और तत्पश्चात् उसमें प्रभु का प्रेम प्रकट होगा । ऐसा प्रेम जगेगा तब ईश्वर दूर नहीं रहेगा । यह प्रेम जगा नहीं है तब तक सब चिंताएँ हैं और मनुष्य प्रभु से दूर है । संसार नाशवंत या विनाशशील है इसलिए उससे प्यार किस कामका ? एक ईश्वर ही अमर है । उससे प्रेम करने से ही सार्थकता है । उसे पाकर ही मनुष्य अमर बन सकता है । ऐसा समझकर संसार के विषयों की ममता और रागवृत्ति नष्ट कर देनी चाहिए । जहां तक इन्द्रियों के विषयों में और संसार के पदार्थों में दिलचस्पी है वहाँ तक ईश्वर-प्रेम या स्वयं प्रभु कैसे मिले ? एक पतिव्रता नारी की भाँति आप अपने मन को ईश्वर या संसार - दोनों में से किसी एक पर समर्पित कर सकते हैं । ऐसे परम प्रेम से ही प्रभु मिलता है । उस प्रेम को जगाने की कोशिश करें । उस परम प्रेम के बीच जो बुराई या दुष्ट वृत्तियाँ आती है उसको नष्ट करें । आत्महत्या करने से परमात्मा नहीं मिलेंगे और आपके खाते में आत्महत्या का दुष्कृत्य जुड़ जायेगा । उसकी सजा भुगतने के लिए आपको फिर जन्म लेना पड़ेगा । प्रभु भी ऐसे डरके मारे दर्शन दे दे ऐसा थोडा ही है ? फिर तो सारा विश्व उसे खुदकुशी की धमकी देकर डराने लग जाए । श्रध्धा रखिए और पुरुषार्थ कीजिए । आपके भजनरूपी सत्कर्म नाकाम या विफल नहीं होंगे । उसका पूरा हिसाब प्रभु चुका देंगे । हमें भजन शरीर द्वारा ही करना है अतएव हताश होकर शरीर को नष्ट कर देने का विचार न करें । जहाँ तक ईश्वरप्राप्ति नहीं होती वहाँ तक जन्म-मरण का चक्र चलता रहेगा । इसी शरीर से प्रभु के लिए हो सके उतना साधन करें । निराश होने से कुछ हासिल नहीं होगा ।

प्रश्न - तो फिर बहुत कुछ भजन करते रहने पर भी प्रभु क्यों नहीं मिलते ?

उत्तर - जिस भजन को आप अपने मन से अधिक मानते हैं वह सचमुच ज्यादा है या नहीं इसका मोल कौन करेगा ? ईश्वर के दरबार में सबका हिसाब होता है । जब एक बुरे कर्म का भी हिसाब होता है और उसका फल अवश्य मिलता है तो आप तो भजन करते हैं । भजन भगवान को प्रिय है । ईश्वर को प्रिय ऐसा कार्य आप करते हैं तो उसका फल आपको प्राप्त न हो ऐसा हो ही नहीं सकता । इसलिए जल्दबाजी न करें । भगवान की न्यायप्रियता पर विश्वास रखकर भजन करते रहें ।

पूर्वजन्म में आपने कैसे कर्म किए हैं, क्या आपको मालूम है ? आपका भजन आपके पूर्व के बुरे कर्मों को धोने में खर्च होता न हो इसका क्या भरोसा ? जब आपके सभी बुरे कर्म धुल जाएंगे तब आपके भजन के पुण्य का पलड़ा नीचे झुकेगा । तब आपको पुण्य के फलस्वरूप ईश्वर-दर्शन होगा । आजका आपका भजन तो आपके पहले के बुरे कर्मों को धुलने में ही व्यतीत हो जाता है अतः हिम्मत मत हारें । साम्प्रत जीवन में कोई गलती न करें, दुष्कर्म न करें और प्रभु का स्मरण, भजन एवं ध्यान अधिकाधिक करें । जब उचित समय आएगा तब ईश्वर आपको अवश्य दर्शन देंगे । तब तक ऐसा मानें कि आप उनके दर्शन के योग्य नहीं हुए । अपने प्रयासों में लगे रहें और आगे बठते रहें ।

जब हम जमीन में बीज बोते हैं तो उसका फल क्या एक दिन में मिल जाता है ? उसका बहुत ही जतन करना पड़ता है और बेसब्री से इन्तज़ार करना पड़ता है । वैसा ही प्रभु-भजन के लिए है । इसलिए कहता हूँ कि प्रभु नहीं मिलते उसका कारण आपके भजन की कमी है ।

भजन भाव से संपन्न होना चाहिए । यह भाव विकृत एवं चंचल चित्त में पैदा नहीं हो सकता । अतएव भजन के साथसाथ भाव जगाने की ओर ध्यान दें । यह भाव जगेगा तब आपका बेड़ा पार हो जाएगा । प्रभु के दर्शन के लिए जब दिल तड़पेगा, उसके बिना आपको कुछ अच्छा नहीं लगेगा, तब आपका काम हो जाएगा । उस वक्त एक बार प्रेम से लिया हुआ प्रभु का नाम, उसके लिए एक ही भावपूर्ण पुकार आपका काम कर देगा । आप बहुत भजन करें, दिनरात जप की गिनती करके एक लाख या करोड़ पर पहुँच जायें, यह इतना मूल्यवान नहीं जितना की थोड़ा किन्तु सच्चे भाव से स्मरण करें । द्रौपदी और गज (हाथी) उसका उत्कृष्ट उदाहरण है । अतः भावपूर्ण भजन करने पर बखूबी ध्यान दें ।

भजन करते करते अगर निराशा उत्पन्न हुई तो आपका खेल ख़तम हो जाएगा ऐसा मानें । निरुत्साह या निराशा साधक के लिए कलंक है, दुश्मन है, उससे उसे दूर ही रहना है ।

एक जगह दो साधु भजन करते थे । वहाँ से नारदजी निकले ।

पहले साधुने नारदजी को देखा और उनका स्वागत किया ।

नारदजीने कहा, मैं विष्णुलोक से आता हूँ ।

विष्णुलोक का नाम सुनते ही साधु खुशी से झूम उठा ।

मुझे प्रभु के दर्शन कब होंगे, इस बारे में प्रभुने कुछ कहा है क्या ?

नारदजी ने कहा, 'हाँ, फिलहाल तुम्हारी ही बात हो रही थी । प्रभुने कहा है कि जिस पैड़ के नीचे बैठकर तुम भजन करते हो उस वृक्ष के जितने पर्ण हैं, उतने साल बीत जाएंगे तब तुम्हें दर्शन होंगे ।'

यह सुनकर साधु अत्यंत हर्षित हो गया ।

वो बोला, 'वाह ! मुझे प्रभु के दर्शन होंगे !' और वह खुशी से झूमने लगा ।

वहाँ से नारदजी दूसरे साधु के पास गए । वहाँ भी वैसी ही बात हुई पर वह साधु तो बिलकुल निराश हो गया । पेड़ के पर्ण जितने साल होने पर मुझे प्रभु के दर्शन होंगे ? यह तो बहुत लम्बा अरसा हुआ ! वह होशोहवास खो बैठा और उसने भजन करना छोड़ दिया ।

पहला साधु अत्याधिक प्रेम से भजन करने लगा और उसे अल्प समय में ही प्रभु का दर्शन हुआ । इससे वह दंग रह गया । प्रभुने कहा, 'नारदजीने तुम्हें जो कहा वह ठीक ही था । परंतु तत्पश्चात् तुमने अपना भजन बढ़ा दिया । पहले तुम जिस गति से भजन करते थे तदनुसार तो दर्शन की बहुत देर थी किन्तु भजन बढ़ने से मेरे दर्शन का योग जलदी आ गया और मैंने तुम्हें दर्शन दिया । दूसरा साधु निराश होकर बहुत कम भजन करता है, अतएव उसे बहुत देरी से दर्शन होगा ।'

इसीलिए कहता हूँ कि सोत्साह भजन करने की ओर ध्यान रखो तो प्रभुकी कृपा सत्वर होगी ।

* * *

२५. ध्यान में एकाग्रता

प्रश्न - ध्यान में चित्त एकाग्र क्यों नहीं होता ? आँख बन्द करके बैठते ही विभिन्न प्रकार के विचार आते हैं और मन दर-ब-दर भटकता है इसका क्या कारण है ? उसका क्या उपाय है ?

उत्तर - यह प्रश्न बहुत सारे साधकों के द्वारा पूछा जाता है । यह सर्व सामान्य शिकायत है और इसके कई कारण है । योगसाधना की जो सीढ़ी है उसके भिन्न भिन्न सोपान क्रमशः - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है । अष्टांग योग के अनुसार ध्यान सातवाँ सोपान है और अन्तिम सोपान समाधि अथवा आत्मदर्शन या ईश्वर-दर्शन है । फिलहाल तो मनुष्य आध्यात्मिक जीवन में प्रवेशित होते ही आँख मुँदकर ध्यान करना शुरु करता है और फिर शिकायत करता है कि मन स्थिर क्यों नहीं होता ? लेकिन मन कैसे स्थिर हो ? ध्यान से पूर्व जो सोपान है उन्हें आप करते नहीं, उनका अनुभव भी प्राप्त नहीं करते और सीधे ध्यान में बैठकर समाधि में ईश्वर-दर्शन की कामना करते हैं, यह कैसे संभव है ? जिसने अपने पूर्वजन्मों में अनेक जप-तप किये हो और उसके फलस्वरूप जिसका मन शुद्ध एवं सात्विक हो वे ही सीधे ध्यानमार्ग के अधिकारी है । उसका हृदय शुद्ध होने से वह ध्यान में तल्लीन हो जाता है । बाकी जिसमें काम-क्रोध भरे हैं, जिसका स्वभाव प्रधानतः राजस या तामस है उसे ध्यान के प्रति दौड़ने से पूर्व जरा धीरज धारण कर स्वभाव की सात्विकता सिद्ध करने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए । मकान बाँधने से पहले उसकी बुनियाद का निर्माण करना चाहिए या नहीं ? बिना बुनियाद के मकान कैसे बनेगा ? ध्यान की साधना में भी जरूरी बुनियाद का निर्माण करना पड़ता है । इसके बिना ध्यान सफल नहीं होगा और मज़ा भी नहीं आएगा ।

सबसे पहला सोपान है यम । यममें पाँच बातों का समावेश होता है - अहिंसा, सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । अहिंसा का मतलब है मन, वचन एवं काया से किसीको हानि नहीं पहुँचाना, सबसे प्यार करना, सत्य बोलना और सत्यरुपी परमात्मा की प्राप्ति के लिए व्रत लेना । तप का मानी है हरेक क्षण ईश्वर के लिए प्रार्थना, जप आदि में गुज़ारना । तदुपरांत गीता में जिन तीन प्रकार के तप का उल्लेख किया है उसका आचरण करना । शरीर, मन या वाणी से संयम का पालन करना उसका नाम ब्रह्मचर्य । ज्यादा से ज्यादा संग्रह छोड़कर अपने जीवन की रक्षा हेतु विश्वास रखना यह अपरिग्रह ।

इसके बाद का सोपान है नियम । इसमें भी पाँच वस्तुएँ हैं । शरीर व मन की पवित्रता यानि शौच । ईश्वर जिस भी हालत में रखे उसमें प्रसन्न रहना और लोभ वृत्ति को छोड़ देना वह सन्तोष । अस्तेय अर्थात् किसीके हराम का न लेना या न खाना । इसका समावेश यम में भी होता है और उसके बदले में तप का समावेश नियम में किया जाता है । तत्पश्चात् स्वाध्याय अर्थात् ईश्वरप्राप्ति का उपाय और ईश्वर की लीला और महात्माओं के जीवन, कार्य और धार्मिक पुस्तकों का नियमित पठन-पाठन और उनके उपदेशों का जीवन में यथाशक्ति आचरण । ईश्वर की नवधा भक्ति में से किसी भी प्रकार की भक्ति करना इसे ईश्वर-प्रणिधान कहते हैं ।

इन दो व्रतों के पालन से व उसके यथाशक्ति आचरण से हृदय के मैल धुल जाते हैं और आसन की विधि होती है । किसी एक स्थान में शांतिपूर्वक दीर्घ समय तक बैठ़ने का नाम आसन है । तदनन्तर श्वासोश्वास की शुद्धि एवं प्राण की शुद्धि प्रक्रिया का नाम प्राणायाम है । मन की भिन्न भिन्न वृत्तियों

को एकाग्र करने की क्रिया को प्रत्याहार कहा जाता है और मन को एक वस्तु में ईश्वर के नामरूप या शरीर के किसी अंग में एकाग्र करने का नाम धारणा है । इसके बाद ध्यान आता है ।

ऐसे अति मूल्यवान ध्यान को आप प्रारंभ में ही करने लगे तो उसमें कामियाब कैसे बनेंगे ? इसलिए सबसे पहले अधिक ध्यान हृदयशुद्धि की ओर दीजिए, सात्विकता प्राप्त करे, सत्संग से मन को पवित्र करे और दुर्गुण एवं व्यसन को नष्ट करे और बाद में शांति से ध्यान का प्रारंभ करें । इस तरह प्रबंध करने से आपकी शिकायत दूर हो जाएगी इसमें कोई सन्देह नहीं । बुनियाद को मजबूत करने में जितना अधिक समय लग जाए उतना ही आपकी साधना का निवनिर्माण अच्छा होगा, एवं मजबूत होगा । जल्दी करने की अपेक्षा जो भी करे वो सोत्साह और सुचारु रुप से करें ।

* * *

२६. ज्योतिष शास्त्र के बारे में

प्रश्न - ज्योतिष शास्त्र के बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर - आप क्या कहना चाहते हैं ?

प्रश्न - क्या ज्योतिष शास्त्र सच्चा है ?

उत्तर - मूलभूत रूप से सभी शास्त्र सच्चे हैं अथवा तो वे अमुक यथार्थ नियम या सिद्धांतो के आधार पर निर्मित हुए हैं । ज्योतिष शास्त्र के विषय में भी यही समझना है । यह शास्त्र गलत नहीं अपितु सत्य है । इसके पीछे निश्चित नियम, संविधान और गणित है । उस पर जिसका जितना काबू हो, उसी अनुपात में वह उसमें प्रवीण बन सकता है । अगर मनुष्य के भीतर ही कमी हो तो वह ज्योतिषशास्त्र को परखने में भूल भी कर सकता है । इससे पूरा ज्योतिषशास्त्र गलत नहीं हो जाता ।

प्रश्न - ज्योतिषशास्त्र की जरूरत है क्या ?

उत्तर - आपके लिए उसकी जरूरत है या नहीं यह आपको तय करना है । उसका आधार आपकी रुचि या प्रकृति पर निर्भर है । यदि आप प्रकृति से जिज्ञासु है और भूत तथा भविष्य के रहस्यों को जानना चाहते हैं, उसके प्रति आपकी विशेष रुचि है तो ज्योतिष की जरूरत आपके लिए सदैव रहेगी । आपकी उसके प्रति कशिश रहेगी । आपको उसके प्रति मीठी ममता एवं भावना रहेगी परंतु यदि आपको उसकी स्पृहा या लालसा न हो और जो हो गया है, होता है, व होनेवाला है, उससे आप संतुष्ट है तो उसकी आवश्यकता आपके जीवन में शायद ही पडेगी । इसका मतलब यह कि जहाँ तक जिज्ञासा है वहाँ तक ज्योतिष आपके या अन्य के लिए जीवित रहेगा । यदि भूत भावि को जानने की जिज्ञासा या अगम घटनाओं का भेद सुलझाने का कुतूहल नहीं होगा तब तो कोई प्रश्न ही नहीं है । फिर तो कुछ कहना शेष नहीं रहता । ज्योतिष सच है या जूठ यह प्रश्न ही नहीं रहेगा । यह सच है या नहीं उससे क्या मतलब ? आपके लिए यह हकिकत गौण हो जाएगी ।

प्रश्न - योगसाधना की सहायता से भूत भावि का ज्ञान होता है क्या ?

उत्तर - साधना करनेवाला योगी अगर चाहता है तो अवश्य हो सकता है । यह बात संपूर्ण सच्ची है इसमें कोई सन्देह नहीं । स्वानुभव के बिना यह समझ में नहीं आएगा ।

प्रश्न - ऐसा ज्ञान किस तरह होता होगा ?

उत्तर - योग की साधना में विकास करनेवाला योगी जब समाधि अवस्था में प्रवेश करता है और समाधि पर काबू पाता है तब उसके भीतर अलौकिक शक्ति का उदय होता है, उस शक्ति द्वारा समाधि की अवस्था दरम्यान वह अपनी इच्छानुसार ज्ञान की उपलब्धि कर सकता है । ऐसा योगी सत्यसंकल्प बन जाते है और अपने ही संकल्प की प्रतिक्रिया के रुप में भूत या वर्तमान काल के किसी व्यक्ति या वस्तु के ज्ञान को प्राप्त कर सकता है । फिर जागृति की अवस्था के दरम्यान भी उसके लिए ऐसा ज्ञान सहज हो जाता है ।

प्रश्न - ऐसे योगी पुरुष फिलहाल अस्तित्व में हैं क्या ?

उत्तर - क्यो नहीं है, अवश्य हैं । उनकी कृपा से उनका दर्शन अवश्य हो सकता है । सिर्फ उसके लिए प्रामाणिक ईच्छा या सच्ची लगन चाहिए । तदुपरांत अगर आप चाहे तो आप भी ऐसे लोकोत्तर योगी बन सकते हैं । आपके भीतर भी ऐसी शक्ति है । सिर्फ वह सुषुप्त अवस्था में निहित है पर आप ये नहीं जानते । उसे जगाओ और विकसित करो । फिर जो चाहो वो सबकुछ कर सकते हो । आत्मिक विकास का मार्ग सबके लिए खुला है लेकिन सब लोग उसका लाभ नहीं उठाते ।

* * *

२७. दर्शन कब हो ?

प्रश्न - भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन की इच्छा मुझे कई समय से हुआ करती है तो यह इच्छा पूरी हो सकेगी क्या ?

उत्तर - क्यों नहीं हो सकती ? केवल श्रीकृष्ण के दर्शन की तमन्ना ही क्यों, किसीके भी दर्शन की तमन्ना पूर्ण हो सकती है इसमें कोई सन्देह नहीं । आजपर्यंत भक्तिमार्ग के कई साधकों को भगवान के दर्शन विभिन्न रूप में हो चुके हैं । इसी तरह आपको भी हो सकता है । सिर्फ इसके लिए आवश्यक योग्यता के रूप में आपके दिल में प्रेम व विश्वास होना चाहिए ।

प्रश्न - प्रेम व विश्वास तो है ही, इससे अधिक प्रेम कैसा ?

उत्तर - ये तो कैसे बता सकते हैं ? प्रेम है इसका इन्कार नहीं, प्रेम है तभी तो आपको ईश्वरदर्शन की इच्छा होती है । उसके बिना ईश्वरदर्शन की इच्छा नहीं हो सकती । लेकिन आज जो प्रेम विद्यमान है वह पर्याप्त नहीं है । वह पर्याप्त है ऐसा मान लेने में गलती होती है । आप उसे पर्याप्त है ऐसा मानते हैं पर ऐसा नहीं है ।

प्रश्न - क्यों ? मेरे प्रेम में क्या कमी है ?

उत्तर - कमी की बात मैं नहीं करता । यह तो आपको तय करना है परन्तु अगर आपके हृदय में ईश्वर के लिए परमप्रेम का प्रादुर्भाव हुआ होता तो आप ईश्वर से दूर नहीं रह सकते अथवा यों कहिए कि ईश्वर आपसे दूर नहीं रहता । आपको ईश्वर का दर्शन कब का हो चुका होता और आपने जो प्रश्न प्रारंभ में पूछा था वह प्रश्न पूछना नहीं पड़ता । मान लीजिए कि ऐसे उत्क्ट प्रेम का उदय होने पर भी किसी कारण से ईश्वरदर्शन में विलंब हो तो भी ऐसी श्रद्धा आपको जरूर रहती कि दर्शन होगा ही । इस विषय में आपको तनिक भी सन्देह न होता । आपके चिन्ह भी बदल जाते ।

प्रश्न - चिन्ह बदल जाते - इसका क्या अर्थ होता है, कृपया बताएँगे ?

उत्तर - अवश्य, चिन्ह बदल जाने का मतलब आपकी पूरी दिनचर्या ही बदल जाती । आज आपको संसार के व्यवहार में जो थोडी बहुत दिलचस्पी है, वह भी गायब हो जाती । आपकी शेष दिलचस्पी संसार के किसी पदार्थ या संसार की किसी प्रवृत्ति में नहीं अपितु ईश्वर में ही रहती । ईश्वर ही आपके जीवन का केन्द्रबिन्दु बन जाता और आप दिनरात ईश्वर-स्मरण करते रहते, ईश्वर के ही चिंतन-मनन में लीन होकर बैठे रहते । ईश्वर के लिए पल-पल प्रार्थना एवं अंतरतम में से आक्रंद करते रहते । ईश्वर के अलावा कुछ न भाए ऐसी अवस्था की कल्पना आप कर सकते हैं ? अभी उस अवस्था की प्राप्ति आपको नहीं हुई इसीलिए आपका मन संपूर्णतः ईश्वर-परायण नहीं रहता । अलबत्ता अगर आप साधना में आगे और आगे बढ़ते रहेंगे तो अंततः उस अवस्था की प्राप्ति अवश्य होगी ।

प्रश्न - दिल में ईश्वर के लिए प्यार हो, त्याग व वैराग्य हो फिर भी ईश्वर-दर्शन होने में विलंब क्यों ?

उत्तर - कभी कुछ समय विलंब भी होता है और उसका कारण सुयोग्य समय का अभाव होता है । प्रबल प्रेम होने पर भी सही वक्त का इन्तज़ार करना पड़ता है । उस वक्त निराश होने की जरूरत नहीं है । कर्मसंस्कार का विघ्न दूर होने पर रास्ता साफ़ हो जाएगा और ईश्वर-दर्शन अवश्य होके रहेगा ।

* * *

२८. पशुबलि

प्रश्न - कतिपय लोगों का मानना है कि पशुओं का बलि देने से देवी प्रसन्न होती है । कुछ पंडित भी ऐसा कहते हुए सुने गए हैं कि शास्त्रों में पशुओं के बलिदान का समर्थन किया गया है । तो उनके कथन को क्या माना जाय - सच या जूठ ? देवी की प्रसन्नता के लिए पशु-बलि क्या अनिवार्य या आवश्यक है ?

उत्तर - देवी की प्रसन्नता के लिए पशु-बलि अनिवार्य या आवश्यक बिलकुल नहीं है । देवी को प्रसन्न करने के लिए आवश्यक है केवल सच्चे दिल के उत्कट और प्रखर प्रेम की । मनकी निर्मलता के बिना यह प्रेम प्रादुर्भूत नहीं होता । ऐसा प्रेम प्रकट होने पर दिल देवी के दर्शन के लिये तड़पने व तरसने लगता है, आकुल व्याकुल हो जाता है । ऐसी तड़पन और बेकरारी के बिना देवी-देवता, इष्ट-देव या ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता ।

प्रश्न - तो पशु-बलि की प्रथा व्यर्थ है ?

उत्तर - व्यर्थ ही है । न्याय, नीति और सत्य की दृष्टि से अगर आप सोचेंगे तो आपको या किसी अन्यको भी यह बात व्यर्थ या निरर्थक लगेगी । जिस महान भारतीय संस्कृति, धर्म या दर्शनने 'अहिंसा परमो धर्मः' का उपदेश दिया है, चराचर में परमात्मा के पुनीत प्रकाश की झाँकी करके सबके प्रति प्यार रखने की तथा सबके हित में रत रहने की सूचना दी है, मन वचन एवं काया से किसीका किंचित भी बुरा न करने की सलाह दी है, वह संस्कृति, धर्म या दर्शन देवी देवता की प्रसन्नता के लिये भी जीव-हत्या का आदेश कैसे दे सकता है ? देवी देवता की प्रसन्नता के लिए तो उसने आसान पद्धति ढूँढ निकाली है । तदनुसार मुट्ठीभर चावल रखने से, श्रीफल या सुपारी रखने से और कुछ न हो तो दो हाथ जोडकर मस्तक नँवाकर पैरों पडने से, प्रेमपूर्ण गीत गाने से या प्रार्थना करने से देवी या देवता प्रसन्न होते हैं । ऐसे आसान, सीधा और निष्कलंक मार्ग का त्याग कर हिंसा के अनैतिक मार्ग का आश्रय क्यों लेना चाहिए और वह भी शास्त्रों के नाम पर ?

प्रश्न - तो पंडितो के अनुसार शास्त्रों में पशु बलि का उल्लेख हुआ है वह गलत ही है न ? आपके कथनानुसार तो वह झूठा ही है न ?

उत्तर - शास्त्रोक्त पशु-बलि की बात झूठी नहीं है परंतु उसका अर्थ तनिक भिन्न है । उसका भावार्थ लेना है, शब्दार्थ नहीं । शब्दार्थ ग्रहण करने से ही यह गलतफहमी फैली है ।

प्रश्न - पशुबलि का भावार्थ क्या होता है ?

उत्तर - पशु शब्द का अर्थ पशुता लेना है । पशु का अर्थ पशुभाव, पशुता, अज्ञान या अहंकार से युक्त जीव भाव होता है । इसके कारण ही मनुष्य को देवी-देवता, इष्ट या ईश्वर का दर्शन नहीं हो पाता । शास्त्रों ने देवी-देवता, इष्ट या ईश्वर की प्रसन्नता के लिए, उसका बलिदान देने का अथवा छुटकारा पाने के लिए कहा है । यही पशुता, अज्ञान या अहंकार के कारण जीव शिव से दूर है, वह शिव का सान्निध्य नहीं पा सकता । इससे मुक्ति पाकर देवी-देवता या ईश्वर के चरणों में गर्व समर्पण करने की

जरूरत है । पशु-बलि का अर्थ ऐसा गहन एवं आध्यात्मिक है । परंतु जिस तरह दूसरे भावार्थ लुप्त हो गये हैं, उसी तरह समय के चलते पशु-बलि का भावार्थ भी विस्मृत हो गया और देवी की प्रसन्नता के नाम पर जहाँ तहाँ पशुओं की घोर हत्या होने लगी । यज्ञ में भी यही परिस्थिति पैदा हो गई । भगवान बुद्ध और महावीर जैसे महापुरुषों ने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई । अर्वाचीन काल में वेदों का अध्ययन करनेवाले आलोचक महर्षि दयानंद सरस्वती ने भी बलि की इस प्रथा को गलत सिद्ध की । इसलिये पशु-बलि की यह पद्धति तनिक भी आवकार्य नहीं है । इसे अच्छी तरह समझ लीजिये ।

* * *

२९. प्रतिकूलता में से रास्ता

प्रश्न - कई दिनों से आपको पत्र लिखने की इच्छा थी जो ईश्वर ने आज पूर्ण की । मैं आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ना चाहती हूँ किंतु मेरा निजी जीवन मुझे उलझन में डाल देता है । मेरे जैसी स्त्रियों के लिए ध्यान संभवित ही नहीं है । बच्चे हैं, घर की जिम्मेदारी तथा सारे दिन की थकान के बाद सुबह जल्दी कैसे उठ सकती हूँ ? छः बजे उठती हूँ तो छोटा बच्चा साथ ही उठ जाता है । सुबह में और रात को पांच मिनट ईश्वरस्मरण भी शायद ही होता है । रात को सेज में ईश्वरस्मरण शुरु करते ही नींद आ जाती है तो मैं क्या करुं ?

उत्तर - मैं सहानुभूति से आपकी बात को समझ सकता हूँ । दिनभर के परिश्रम के पश्चात् थकान के कारण नींद का आ जाना स्वाभाविक ही है । सेज में ईश्वर-स्मरण शायद ही हो । और विशेषतः ऐसी अवस्था में तो असंभवित सा है फिर भी आपको आगे बढ़ने की तमन्ना है इसीसे पता चलता है कि आपकी आत्मा में शुभ आध्यात्मिक संस्कार सुषुप्तावस्था में निहित है । उस अरमान को पूरा करने के लिए अनुकूलता को ढूँढ डालिए । रात को नींद आ जाती है तो कोई हर्ज नहीं । दिन में किसी भी समय और घर के काम करते हुए ईश्वर-स्मरण करने की आदत डालिए । ऐसा करने पर तन से घर का काम होगा और मन से ईश्वर स्मरण । दोनो कार्य जारी रहने पर भी किसी कार्य का बोझ न लगेगा । दोनों एक दूसरे के बीच में न आएंगे । दूसरी बात यह है कि प्रातःकाल छः बजे उठने के बजाय एक या आधा घण्टा जल्दी उठकर आप ईश्वर-स्मरण कर सकती हैं । घर के दूसरे सदस्य उठे और घर की प्रवृत्तियों की शुरुआत हो इससे पहले थोड़ा आत्मिक साधना का शांत अभ्यास कर सकती है । प्रतिकूल परिस्थिति में रास्ता निकालना अपने हाथों में ही है अतएव वक्त निकाले ।

प्रश्न - एक और प्रश्न भी मुझे सताता है । हम औरतों को चार-पांच बच्चे होने के बाद संसार की इच्छा नहीं होती, किंतु पुरुषों को तो साठ बरस तक तृप्ति नहीं होती । नारियाँ पराधीन हैं । संसार में अशांति न हो इसके लिए अमुक चीजों का आधार लेने के लिए उनको बाध्य होना पड़ता है । अब ऐसी अबलाओं का उद्धार कैसे होगा ? अगले जन्म में पुरुष का अवतार प्राप्त करने की प्रार्थना ही उन्हें तो करनी पड़ेगी ।

उत्तर - आपका यह प्रश्न भी सर्वसामान्य है । कुछ पुरुष विषयी होते हैं तो कुछ स्त्रियाँ । परंतु यह सच है कि विषय की लोलुपता अत्यंत हानिकर एवं प्राणघातक है इसका इन्कार नहीं किया जा सकता । नर हो या नारी, उसे आखिरकार तो इससे छुटकारा पाना ही है । जो पुरुष साठ सालकी बड़ी उम्र तक शरीरसुख की लालसा रखता है और अपनी पत्नी के विकास को रोकता है उसे शर्म करनी चाहिए और, शर्म से मर जाना चाहिए । किंतु ऐसी परिस्थिति में आपको क्या करना चाहिए जानती हैं आप ? पुरुष की हीनवृत्ति के हवाले चुपचाप हो जाने के बजाय उसे आप समझाइए और समझाने पर भी अगर वह न माने तो उनकी इच्छा आपके और उनके लिए भी हितकारक नहीं ऐसा कहिए । इतना आत्मबल प्राप्त करें । साथ ही अपने आपको बेसहारा मानने की अपेक्षा ईश्वर का शरण लेकर उनको सच्चे दिल से प्रार्थना कीजिए । वे आपके पति के हृदय में नया आलोक फैलाकर उसका हृदय-परिवर्तन कर आपके जीवन-पथ को कंटकरहित बनाएँगे । मुश्किलों से हिम्मत न हारें । मुसीबतों को शिशुसमान सरलता से

ईश्वर के पास उपस्थित करना सीखें । अमुक सिद्धांत या आदर्शों का यथाशक्ति पालन करें । यही सत्याग्रह है उससे आपकी बहुत सी मुसीबतें दूर हो जाएँगी । याद रखिए ईश्वर सदा आपके पास है और प्रत्येक परिस्थिति में आपको प्रकाश पहुँचाने के लिए तत्पर हैं इसीलिए निराश न बनें । जो परिस्थिति है उसमें से युक्ति-प्रयुक्ति से रास्ता निकालकर धीरे धीरे आगे बढ़े । आपकी भावना एवं वृत्ति अच्छी और सच्ची है इसलिए ईश्वर आपको अवश्य सहायता करेंगे ।

* * *

३०. स्थितप्रज्ञ के बारे में

प्रश्न - स्थितप्रज्ञ पुरुष किसे कहते हैं ?

उत्तर - गीता के दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञ पुरुष का उल्लेख किया गया है । जिसकी बुद्धि स्थिर हुई हो और जिसका मन संकल्प-विकल्प से रहित होकर परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर चुका हो उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं । गीता में ऐसे पुरुष के लिए गुणातीत शब्द का प्रयोग भी किया गया है ।

प्रश्न - ऐसे पुरुष को पहचानने के कुछ बाह्य लक्षण है ?

उत्तर - बाह्य लक्षणों का अर्थ यदि आप बाह्य दिखावा करते हैं तो मुझे कहना पड़ेगा कि उसके बारे में स्थितप्रज्ञ की दुनिया में कोई एक समान नियम नहीं है । कतिपय लोग मानते हैं कि स्थितप्रज्ञ पुरुष अमुक प्रकार का भेष धारण करता है और अमुक रीति से ही रहता है परंतु यह मान्यता प्रत्येक परिस्थिति में उचित नहीं है । बाह्य दिखावे की दुनिया में स्थितप्रज्ञ पुरुष अपनी इच्छा, रुचि या पसंदगी के अनुसार बर्तता है । वह किसी निर्धारित नियम के आधीन नहीं है । इस परसे उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता । वैसा मूल्यांकन गलत ही साबित होगा । फिर भी स्थितप्रज्ञ की पहचान के लिए कतिपय अंतरंग लक्षण हैं जिनकी प्रतिध्वनि बाहर की दुनिया में या उनके बहिर्मुख जीवन व्यवहार में पड़ती है । इस लक्षणों के कारण हमें उनको पहचानने में सहायता मिलती है ।

प्रश्न - ऐसे लक्षणों का सिंहावलोकन प्रस्तुत करेंगे आप ?

उत्तर - अवश्य । स्थितिप्रज्ञ पुरुष का प्रथम लक्षण तो यह है कि उनके भीतर व बाहर परमशांति का साम्राज्य दिखाई देता है । ईश्वर-साक्षात्कार के परिणामस्वरूप जो परमशांति की अनुभूति उन्हें हुई होती है वह उसके मुख पर, आँख में, वाणी में और हलनचलन में दृष्टिगोचर होती है । उसके समीप जाने पर ही हमें उस शांति का परिचय मिलता है । किसी भी समय या परिस्थिति या स्थल में शांति का प्रवाह अबाधित रूप में जारी रहता है । मनुष्य मात्र वैसी अखंड और सनातन शांति की कामना करता है, उसके लिए परिश्रम करता है परंतु यह शांति उसके भाग्य में नहीं होती क्योंकि वह शांति केवल मन बुद्धि से अतीत होने से अथवा अतीन्द्रिय प्रदेश में प्रवेशित होने से मिल सकती है । इसके लिए आत्मिक साधना का आश्रय ग्रहण करना चाहिए और वहाँ तक उत्साह और हिम्मत से आगे बढ़ना चाहिए, जहाँ तक उसमें सफलता न मिले । इस पथ पर बहुत कम लोग प्रयाण करते हैं अतएव बहुत कम लोग वैसी शांति की प्राप्ति कर सकते हैं, यह बात दुनिया का निरीक्षण करने से हम समझ सकते हैं ।

प्रश्न - शांति प्राप्त करने के लिए क्या आत्मिक साधना का आधार लेना चाहिए या किसी अन्य तरीके से भी उसकी प्राप्ति हो सकती है ?

उत्तर - किसी अन्य तरीके से - इससे आप क्या कहना चाहते हैं ?

प्रश्न - दुन्यवी सुखोपभोगों से भी शांति उपलब्ध होती है ।

उत्तर - किंतु वह शांति तो कितनी अस्थायी, उपरी या अधूरी होती है, यह आप आसानी से समझ सकेंगे - जैसे वर्षाऋतु में होनेवाली बिजली चिरस्थायी नहीं रहती उसी तरह दुन्यवी विषयों या सांसारिक सुखोपभोगों से जन्य शांति अमर या शाश्वत नहीं रहती । उस शांति का आधार तो बाह्य पदार्थों एवं संजोगो पर रहता है अतः वैसा आधार दूर होते ही या विपरीत होते ही वह गायब हो जाती है और उस समय मनुष्य अशांत हो जाता है । किंतु स्थितप्रज्ञ पुरुष की शांति तो मन की निर्मलता, स्थिरता और ईश्वर-साक्षात्कार के परिणामस्वरूप अपनी आत्मा से स्वतः प्राप्त हुई होती है अतएव वह कभी नष्ट नहीं होती । उसका आधार किसी बाह्य पदार्थ या परिस्थिति पर नहीं होता । यह महत्वपूर्ण भेद अब आप जान गये न ?

* * *

३१. स्थितप्रज्ञ के लक्षण

प्रश्न - स्थितप्रज्ञ पुरुष की पहचान का एक महत्वपूर्ण लक्षण शांति के बारे में आपने बताया । इसके सिवा कोई और लक्षण बता सकते हैं आप ?

उत्तर - अवश्य । दूसरे अनेक लक्षण हैं । स्थितप्रज्ञ पुरुष का दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण ईश्वर साक्षात्कार अथवा ईश्वर के लिए अनंत प्रेम । प्रेम के बिना ईश्वर साक्षात्कार संभवित नहीं है । और बिना ईश्वर साक्षात्कार के परमात्मा के साथ सतत समागम नहीं होता । तात्पर्य यह कि सब के मूल में ईश्वरप्रेम है । उसे स्थितप्रज्ञ पुरुष का मेरुदंड कहा जा सकता है । उसी प्रेम से प्रेरित होकर वह ईश्वर साक्षात्कार के लिए साधना करता है और अंत में साक्षात्कार कर लेता है । मनुष्य को ईश्वर साक्षात्कार दो जगह, अपने भीतर एवं बाहर करना है । भीतर यानी अपने शरीर के भीतर और बाहर यानी संसार के सभी पदार्थों में । इस द्विविध साक्षात्कार को ही संपूर्ण साक्षात्कार कह सकते हे और इन्हीं से कृतार्थता हासिल होती है । स्थितप्रज्ञ पुरुष के लिए वैसा साक्षात्कार सहज हो जाता है और फलतः उसका मन हमेशा परमात्मामें ही रत रहता है । उसके मनमें, हृदयमें, प्राणों और रोम रोम में ईश्वर और केवल ईश्वर ही रहता है ।

प्रश्न - क्या इससे आप यह कहना चाहते हैं कि स्थितप्रज्ञ पुरुष को संसार के पदार्थों से प्रीति नहीं होती है ? अथवा शास्त्रों में जिसे वैराग्य की संज्ञा दी गई है वे उस वैराग्य की जीती जागती तसवीर है ?

उत्तर - वैराग्य के अभाव में वैसी असाधारण अवस्था की प्राप्ति संभवित नहीं है अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्थितप्रज्ञ पुरुष वैराग्य की प्रतिमूर्ति होते हैं । लेकिन यहाँ लोगों में वैराग्य शब्द का जो रुढ अर्थ प्रचलित हुआ है, उसे यहाँ गठन नहीं करना है समझे ? वैराग्य यानी संसार के विषयों में राग न होना और परमात्मा में विशेष अनुराग होना । इस दृष्टि से देखा जाय तो स्थितप्रज्ञ पुरुष इस अर्थ के अनुवाद के समान हैं । अगर यह कहा भी जाये कि संसार के पदार्थों से उन्हें प्रीति हैं तो भी उन्हें राग या मोह नहीं होता । अगर आप प्रेम और राग या प्रेम और मोह के भेद को समझ सकें तो इस कथन को भी आसानी से समझ सकेंगे ।

प्रश्न - क्या स्थितप्रज्ञ पुरुष कार्य करते हैं या नहीं ?

उत्तर - बिना कर्म किये कौन रह सकता है ? प्रत्येक देहधारीको कर्म करना ही होता है । उससे एक या दूसरे प्रकार के कर्म होते ही रहते है । किंतु स्थितप्रज्ञ किसी भी प्रकार के अहंभाव के बिना, परमात्मा की प्रेरणा से प्रेरित होकर कर्म करता है । उसे न तो उस कर्म में आसक्ति होती है न उसके फल में । वह दूसरे के लिए हितकर होता है । दूसरों के हितरूप यज्ञों की वेदी में अमूल्य आहुति के रूप में होनेवाले वे कर्म संसार के लिए हितकर सिद्ध होते हैं । वे कर्म कदापि बंधनरूप नहीं होते । सामान्य मनुष्य के कर्म इस प्रकार के नहीं माने जा सकते । वे तो विवेकरहित, अहंभाव से युक्त, राग द्वेष एवं आसक्ति से भरे, शुभाशुभ असरों से पूर्ण एवं बंधनकारक होते हैं । जब कि स्थितप्रज्ञ पुरुष कर्म करते हैं

फिर भी वे उनके असर से अलिप्त रहते हैं । यह अलिप्तता अथवा अनासक्ति और परहितपरायणता स्थितप्रज्ञ पुरुष के महत्त्वपूर्ण लक्षण है ।

प्रश्न - जो महात्मा किसी प्रकार के सक्रिय कार्य या सेवा नहीं करते, भाषण, प्रवचन या प्रचार नहीं करते परंतु एकांत स्थलों में जीवन बिताते हैं उनसे क्या फायदा ? उन्हें एकांत का त्याग करके लोगों के बीच प्रचार हेतु आना चाहिए, एसा आपको नहीं लगता ?

उत्तर - आपका प्रश्न दो भागों में विभक्त हुआ है । अतएव दोनों पर विचार करना पडेगा । आप अगर यह मानते हैं कि भाषण या प्रवचन करने में और प्रचार के लिये दौड़धूप करने में ही सेवा की इतिश्री है तो यह असमीचीन है । सेवा का क्षेत्र तो बहुत विशाल है । स्थूल पद्धति की अपेक्षा अन्य अनेक पद्धतियों से सेवा की जा सकती है । गीता का कथन है कि योगीजन शरीर, मन और केवल इन्द्रियों से भी कर्म करते हैं ।

दूसरी बात यह है कि आपके और महात्माओं के दृष्टिकोण में आसमान जमीन का अन्तर हो सकता है । आपके इन्द्रियों के पदार्थ एवं सांसारिक विषय महात्माओं के लिये क्षुद्र है । जीवन की समूची शक्ति का उपयोग ईश्वर-प्राप्ति या मुक्ति के लिये करना ही महान सेवा है ऐसा वे मानते है । वे कहते हैं आप किसकी सेवा करने दौडते हैं । आप दूसरों की सेवा भले ही करें किंतु आपको अपनी सेवा भी करनी है । बंधन से मुक्त होकर आपको मुक्ति का आनंद उठाना है । आत्मा की साधना द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार करके अल्प मिटकर विराट बनना है । मनुष्य जीवन का सबसे श्रेष्ठ पुरुषार्थ यही है । इस पुरुषार्थ की उत्कट भूख लगने के कारण ही महात्मा एकांतवासी बनकर तप करते हैं अतएव वे सेवा नहीं करते ऐसा कैसे कहा जा सकता है ? उनका दर्शन, वचन एवं जीवन संसार के लिये प्रेरणाप्रद है इसमें कोई सन्देह नहीं । इतनी उत्कट भूख जिसमें नहीं जगी वे कर्म के बाह्य मार्ग पर विकास करते हैं । शेष यह कि उपरोक्त कोटि के महात्मा तो अपने आध्यात्मिक आदर्श को सिद्ध करने के बाद ईश्वरेच्छा के अनुसार बाह्य कर्म में जुट जाते हैं । ऐसे महात्माओं से संसार को अत्यधिक लाभ होता है । ये महात्मा ही लोगों को आत्मिक विकास की याद दिलाते हैं । दूसरे कंचन कामिनी और कीर्ति के लिये दौड-धूप करनेवाले लाखों लोगों की अपेक्षा वैसे एक ही संतपुरुष से संसार को ज्यादा लाभ होता है ।

* * *

३२. चमत्कार और धर्म

प्रश्न - चमत्कारों का धर्म या ईश्वर के साथ कोई सम्बन्ध है क्या ?

उत्तर - जिस प्रकार के चमत्कारों की बात आप करते हैं अथवा सामान्यतया लोग जिसे चमत्कार मानते हैं, इस प्रकार के चमत्कार जादू विद्या के प्रयोग जैसे होते हैं । अक्सर इन चमत्कारों का मूल मैली विद्या में होता है । ये चमत्कार ज्यादातर लोकरंजन के लिए या कीर्ति तथा धनप्राप्ति के लिए किए जाते हैं । उनका आश्रय लेनेवाला उच्च कोटि का आध्यात्मिक विकास कर चुका है या करना चाहता है ऐसा हम नहीं कह सकते । ऐसे चमत्कारों का धर्म, ईश्वर, आध्यात्मिकता या मनुष्य के वैयक्तिक विकास के साथ तालुक्क न हो यह आसानी से समझ सकते हैं लेकिन चमत्कारों का एक दूसरा प्रकार भी है जिसका धर्म, ईश्वर, आध्यात्मिकता या मानव के वैयक्तिक विकास के साथ वास्ता हो सकता है ।

प्रश्न - ये कौनसा प्रकार है इस पर आप प्रकाश डाल सकते हैं ?

उत्तर - अवश्य, इस प्रकार के बारे में मैं प्रकाश डालूँ उसके पहले यह समझ लीजिए कि उसे चमत्कार के अति प्रचलित नाम से पहचानने के बदले उसे विशेष शक्ति या सिद्धि के नाम से पहचानना अधिक उचित होगा । चमत्कार शब्द की ध्वनि में एक प्रकार की अलग व्यंजना निहित है । इस शब्द में किसीको दंग कर देनेवाले जादू के प्रयोगों का भाव समाविष्ट है । लोग प्रायः इस शब्द को इसी तरह पहचानते हैं परंतु हम जिसकी बात कर रहे हैं वह शक्ति भिन्न है । आत्मोन्नति की दिशामें आगे बढ़नेवाले साधकको उसकी उपलब्धि स्वतः अथवा स्वाभाविक रूपसे ही होती है । फूल में जैसे सुगंध, मध में मीठास और सूर्य में प्रकाश सहज होते है उसी तरह साधना में तरक्की करनेवाले साधक या सिद्धपुरुष में इस शक्ति का प्रादुर्भाव कुदरत के नियमानुसार खुद-ब-खुद ही होता है । अमुक प्रकार के प्राणायाम से, निरंतर ध्यान या समाधि के अभ्यास से, ईश्वर-दर्शन से या तो मंत्रानुष्ठान से ऐसी असाधारण शक्ति का उद्भव होता है । उद्भूत शक्ति धीरे धीरे विकसित होती है । सामान्य जन उसे चमत्कार के नाम से पहचानते हैं परंतु चमत्कार शब्द उसके लिए उचित नहीं है । चमत्कार शब्द आध्यात्मिक विकास का परिचायक नहीं है । इसलिए मैं विशेष शक्ति या सिद्धि ऐसे शब्द का प्रयोग करता हूँ ।

प्रश्न - आत्मिक विकास की ओर अग्रसर होनेवाले हर साधक को ऐसी शक्ति प्राप्त होती है ?

उत्तर - न्यूनाधिक रूपमें होती है । कतिपय समय बहुत लम्बे अरसे के बाद होती है, फिर भी शक्ति का मोह रखनेके बजाय साधकको सर्वशक्तिमान ईश्वरका ही मोह रखना चाहिए और परमात्माके प्रत्यक्ष परिचय या साक्षात्कार के लिए ही साधना करनी चाहिए । जो शक्ति के पीछे पड़ता है वह सर्वशक्तिमान प्रभुको भूल जाता है और गलती करता है । शक्ति की अपेक्षा शक्ति के स्वामी महान है यह याद रखना है और अपने जीवन के ध्येय के रूपमें शक्ति नहीं पर उसके स्वामी की पसंदगी करनी चाहिए । शक्ति न होने पर भी जीवन का कल्याण हो सकेगा मगर परमात्मा के बिना जीवन की सार्थकता हासिल नहीं होगी ।

प्रश्न - सिद्धियों में पड़कर होश गँवा बैठने का या रास्ता भूल जानेका डर रहता है क्या ?

उत्तर - रहता है किन्तु निर्बल मन के, विषयलोलुप साधकों के लिए । जिसका मनोबल मजबूत है और जिसके मनमें ईश्वर के बिना किसी भी चीज की लालसा नहीं है उसको भय रखने की जरूरत नहीं है । ना, सपनों में भी नहीं । जिनका मनोबल दुर्बल है वह तो सिद्धि हासिल न हो, फिर भी अन्य साधकों की बातों में आकर अपने होश खो बैठेंगे या मार्ग भूल जाएँगें । वे तो सभी परिस्थितियों में असलामति का अनुभव करेंगे । याद रखिए कि उच्च कोटि के साधक विशेष शक्ति या सिद्धि के लिए व्यर्थ प्रयत्न नहीं करते, उसे आदर्श मानकर भी नहीं चलते । वे अपने साधनापथ में सहजरूप से मिलनेवाली शक्तियों का स्वीकार करते हैं । शक्तियाँ उन्हें पथभ्रांत न करे इतना आत्मबल उन्होंने हासिल किया होता है ।

* * *

३३. सख्य भक्ति

प्रश्न - आपने कहा है कि सख्य भक्ति में भक्त भगवान को अपना सखा या मित्र मानता है । तो क्या इस तरह भगवान को सखा मानना उचित है ?

उत्तर - हाँ, इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । भक्ति के उस प्रकार में मानवस्वभाव प्रतिबिंबित होता है । मनुष्य के अति प्रिय और मधुर संबंध होते हैं उन्हीं की भावना भक्ति में सम्मिलित की जाती है और ईश्वर से वैसा नाता जोड़ा जाता है, उसको दृढ़ बनाया जाता है और उसके द्वारा भक्त ईश्वर के रसप्रदायक, सुखदायक, सतत सान्निध्य की कामना करता है । सुदीर्घकालीन अभ्यास के परिणामस्वरूप ऐसी भावना उसके लिए सहज बन जाती है । यह भावना विशाल होती है और प्रेम के पवित्र स्वरूप को अधिकाधिक उद्‌बुद्‌ध करनेवाली होती है, अतएव वह बाधक नहीं अपितु साधक सिद्‌ध होती है । आपको साधना पथ की किसी भी पद्‌धति या भावना से नफरत नहीं करनी है और यह भी नहीं मानना है कि भावना नितांत बुरी है और इसलिए वर्ज्य है । उन भावनाओं को सहज भावनाओं के रूप में स्वीकृत करके उसे उन्नत बनाने का और अपने अनुकूल बनाने का यत्न करना है । ऐसा करने से जीवन उर्ध्वगामी बन जाएगा, ऐसा भक्तिमार्ग के आचार्य मानते हैं और इसमें शंका करने का कोई कारण नहीं है ।

प्रश्न - दास्य व सख्य भक्ति का अवलम्बन लेना क्या सबके लिए जरूरी है ?

उत्तर - सभी को उसका सहारा लेना ही चाहिए ऐसा मत मानिए । इसके लिए कोई एक-सा नियम नहीं है । यह तो अपनी-अपनी इच्छा, रुचि और पसंदगी का प्रश्न है । जिसे उसका सहारा लेना हो वह ले सकता है । इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है । जिसे उसका आधार लेने की आवश्यकता महसूस न हो वह उसका आधार लिये बिना भी आगे बढ़ सकता है । आप किसका आश्रय लेते हैं उसका इतना महत्व नहीं है । किन्तु इसके आधार के द्‌वारा आप आगे बढ़ते हैं या नहीं इसका महत्व है । आगे बढ़ने का महत्त्व साधना में सबसे विशेष है । किसी भी उदात्त या सात्विक भावना अगर आपके आत्मिक विकास में सहायक सिद्‌ध होती है, तो आप उसका आधार ले सकते हैं । याद रखें, भक्तिमार्ग में ये भावनाएँ अनिवार्य नहीं हैं फिर भी हृदय को ईश्वर-प्रेम से अधिकाधिक भरने के लिए आवश्यक है और उसका हेतु आखिरकार ईश्वर-साक्षात्कार करके जीवन को कृतार्थ बनाना है । अगर इस महत्वपूर्ण बात का विस्मरण होगा तो भारी नुकसान होगा । भक्त केवल भावमें ही व्यर्थ भटकता रह जाएगा और उस भाव का फायदा नहीं उठा सकेगा । भाव की कीमत ज्यादा है किंतु ईश्वर-साक्षात्कार का मूल्य इससे भी अधिक है, यह हमेंशा याद रखें ।

प्रश्न - सख्य भक्ति करनेवाला साधक अपने आपको ईश्वर के समान मान ले ऐसा खतरा उपस्थित हो सकता है ? ईश्वर को अपना सखा माननेवाला ईश्वर की विशेष महिमा को समझ सकता है क्या ?

उत्तर - अवश्य समझ सकता है । ईश्वर की सख्य भक्ति करनेवाला व्यक्ति अपने आपको ईश्वर नहीं मान सकता क्योंकि ऐसा मानें तो उससे भक्ति नहीं हो सकती । ईश्वर हमारी अपेक्षा उत्कृष्ट या

श्रेष्ठ है ऐसा समझकर ही भक्त भक्ति करता है । अतएव आप कहते हैं वैसा भय रखने की कोई जरूरत नहीं है । आप जानते है कि संसार में दो मित्रों के बीच भी इस तरह की समानता नहीं होती, फिर भी उनकी दोस्ती बनी रहती है और बढ़ती भी है । भक्त के बारे में भी वही समझ लीजिए । सख्य भक्ति का आश्रय लेनेवाला अपने आपको ईश्वरतुल्य नहीं मान लेता । हरगिज़ नहीं मानता ।

* * *

३४. समाधि किसे कहते हैं ?

प्रश्न - समाधि किसे कहते हैं ? मन का समाधान हो या मन स्थिर या एकाग्र हो जाय वही समाधि है न ?

उत्तर - मन का समाधान हो जाय, वह एकाग्र या स्थिर हो जाय उसे समाधि नहीं कहा जा सकता । समाधि अवस्था की प्राप्ति इतनी आसान नहीं है । अलबत्ता मन का समाधान और उसकी स्थिरता या एकाग्रता का उसमें महत्वपूर्ण योगदान है फिर भी समाधि उससे आगे की अवस्था है । मन की स्थिरता व एकाग्रता जिस प्रक्रिया से होती है उसे ध्यान कहते हैं । ध्यान की अवस्था जब उत्कृष्टता और गहराई को धारण करती है तब समाधि होती है । वह दशा निराली होती है । अतएव ध्यान को ही समाधि मत मान लीजीए ।

प्रश्न - समाधि अवस्था में क्या क्या होता है ?

उत्तर - ध्यान की साधना द्वारा जब मन स्थिर या एकाग्र और नितांत शांत हो जाता है तब समाधि अवस्था की प्राप्ति होती है ऐसा कहा जाता है । इस अवस्था में साधक को अनेकविध अनुभव होते हैं । यह सच है कि साधकों की प्रकृति, रुचि और श्रेणी के अनुसार वे अनुभव अलग-अलग होते हैं किंतु उस वक्त उनकी बाह्य दशा एक-सी होती है अर्थात् उस वक्त वे शरीक का होश गवाँ देते हैं और उनको यह पता नहीं चलता कि उनके इर्दगिर्द क्या हो रहा है । इन्द्रियों के विषयों की अनुभूति उन्हें नहीं होती । इतना ही नहीं, देश और काल का भी खयाल उन्हें नहीं रहता । उस अवस्था में वे शाश्वत आत्मिक सुख की अनुभूति करते हैं । इस तरह देखा जाय तो कितनी भी स्थिरता हासिल क्यों नहीं हुई हो फिर भी जहाँ तक देहाध्यास बना रहता है वहाँ तक समाधि हुई ऐसा नहीं कहा जा सकता । समाधि देहाध्यास से परे की अतीन्द्रिय अवस्था है ।

प्रश्न - अच्छा, तो जिसे संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि कहा जाता है वह क्या है ?

उत्तर - जिस अवस्था में सूक्ष्म मन की सहायता से साधक को कोई दिव्य दर्शन होता है या दैवी वाणी सुनाई पडती है उस अवस्था को संप्रज्ञात समाधि कहा जाता है । इस अवस्था में सूक्ष्म मन विद्यमान रहता है, कोई अनुभव होता है और उसका आनंद भी बना रहता है । इससे आगे बढ़कर जिस अवस्था में सूक्ष्म मन भी शांत हो जाता है और आत्मानुभव के बाद केवल आत्मा ही शेष रहती है उस अवस्था को असंप्रज्ञात समाधि के नाम से विभूषित किया जाता है । समाधि के दो प्रकार हैं । उन्हें ही दूसरे शब्दों में सविकल्प और निर्विकल्प समाधि के नामसे पुकारा जाता है ।

प्रश्न - क्या सब तरह की साधना के मूल में प्यार ही निहित है ?

उत्तर - क्यों नहीं ? बिना प्रेम के साधना हो ही कैसे सकती है ? सब प्रकार की साधना के मूल में ईश्वर-प्रेम है और होना चाहिए । परमात्मा प्रेमस्वरूप है अतएव उनके साक्षात्कार के लिए हमें चाहिए कि हम प्रेम स्वरूप बनें । साधना करने का मकसद भी तो यही है ।

* * *

३५. ध्यान से सिद्ध पुरुषों का दर्शन

प्रश्न - ध्यान की साधना में आगे बढ़े हैं ऐसा कब कहा जाता है ?

उत्तर - ध्यान करते वक्त मन बाह्य पदार्थों में दौडना या विहरना छोड़ दे, सबकुछ भूलकर केवल ध्येय-पदार्थ में ही तल्लीन हो जाये और ऐसी तन्मयावस्था एक दो क्षण नहीं, घण्टो तक अनवरत रूप से रहे तब कहा जायेगा कि आप ध्यान की साधना में आगे बढे हैं । ध्यान में बैठते ही आपको महसूस होगा कि आपका मन एकाग्रता के अमृतमय स्त्रोत में अनायास ही बहने लगेगा और आपको दूसरा कुछ याद नहीं आयेगा ।

प्रश्न - ध्यान कहाँ करना चाहिए ?

उत्तर - किसी भी मंत्र में, इष्टदेव में, शरीर के किसी भी केन्द्र में, जहाँ उचित लगे वहाँ ध्यान किया जा सकता है । जैसे कि गीता के छठे अध्याय में बताया गया है, किसी भी प्रकार के प्रतीक में ध्यान लगाये बिना, संकल्प-विकल्प से रहित होकर, शांत अवस्था में बैठकर भी ध्यान किया जा सकता है । आप अपनी रुचि के अनुसार, पसंदगी और योग्यता के अनुसार ध्यान कहाँ करना चाहिए यह तय कर सकते हैं । अगर आप स्थल के बारे में पूछते हैं तो मेरे मतानुसार कोलाहलरहित, शांत एवं एकांत स्थान ध्यान की साधना के लिए अत्यंत उपयोगी है । अगर ऐसा स्थान न मिले तो घर में ही अपनी मनपसंद जगह पर अवकाश के समय में ध्यान कर सकते हैं ।

प्रश्न - शरीर के किस केन्द्र में ध्यान करना अधिक अनुकूल होता है ?

उत्तर - हृदय प्रदेश में अथवा दो भ्रमर के मध्य में ध्यान करना अधिक अनुकूल होता है । भक्तिमार्ग के साधक प्रायः हृदयप्रदेश को पसंद करते हैं । ज्ञानी एवं योगी प्रकृतिवाले साधक भ्रमर के बीच का प्रदेश चुनते हैं । आप इन दोनों में से किसी भी एक की पसंदगी कर सकते हैं । मैं समझता हूँ भ्रमर के मध्य का भाग आपको अधिक अनुकूल रहेगा ।

प्रश्न - सुना है कि ध्यान करने से उच्च कोटि के सिद्धपुरुषों का दर्शन होता है । क्या यह सच है ?

उत्तर - हाँ, बिलकुल सच है । ध्यान की साधना में अधिक गोता लगाकर आप इस बात का अनुभव कर सकते हैं । ऐसा अनुभव कोई भी कर सकता है । अल्प या अधिक साधना के बावजूद भी ऐसा न हो तो निराश मत होइए और ऐसा शीघ्र अभिप्राय मत दे दीजिए कि साधना में होनेवाले अंतरंग अनुभव मिथ्या है । महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन के विभूतिपाद में कहा है कि दोनों भ्रमर के मध्यमार्ग में अर्थात् आज्ञाचक्र में चित्त को स्थिर करके जब ध्यान किया जाता है तब सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं । यह बात नितांत सत्य है परंतु उसके प्रत्यक्ष अनुभव के लिए दिल खोलकर साधना करने की जरूरत है और वह भी धीरज, श्रद्धा, हिम्मत व लगन से मन को निर्मल बनाते हुए ।

प्रश्न - क्या ये सिद्ध पुरुष सहायक होते हैं ?

उत्तर - अवश्य सहायक होते हैं । वे दिशा-निर्देशन करते हैं, मंत्र प्रदान करते हैं, प्रोत्साहन और सलाह सूचन देते हैं और इस प्रकार साधक के पथप्रदर्शक बनते हैं । इसके अतिरिक्त भी वे अमूल्य सहायता प्रदान करते हैं । इसके बारे में तो आपको तभी ज्ञान होगा जब आप स्वानुभव करेंगे और उसके संपर्क में आएँगे । वहाँ तक आप मेरी बात में विश्वास कीजिए और साधना में आगे बढ़ते रहिए ।

* * *

३६. गुरुमंत्र बदल सकते हैं ?

प्रश्न - मुझे मेरे गुरु द्वारा जो मंत्र मिला है वह लम्बा है इसलिए मुखपाठ नहीं होता । इसके बदले मैं 'श्रीकृष्ण शरणं मम' - यह मंत्र सदैव जपता रहूँ तो क्या सफलता मिलेगी ?

उत्तर - आपका प्रश्न महत्वपूर्ण है । कई साधक या भक्त यह प्रश्न पूछते हैं । गुरु द्वारा दिया गया मंत्र यदि लम्बा हो या संक्षिप्त, वह यदि किसी कारण पसंद न हो तो अपनी रुचि के अनुसार दूसरे मंत्र का जप करने में कोई हर्ज नहीं है । मंत्रजप से जो सफलता मिलती है वह तो उसके परिणामस्वरूप पैदा होनेवाली हृदय की निर्मलता, एकाग्रता और फलतः उत्पन्न ईश्वर-प्रेम से मिलती है । इसे ध्यान रखकर श्रद्धा एवं भक्ति से नियमित रूप से जप करेंगे तो अवश्य लाभ होगा । जप जड़ या यांत्रिक न हो जाय उसका अच्छी तरह ध्यान रखें । यदि गुरु-मंत्र लम्बा हो और इसलिए आपको पसंद न हो तो दूसरा मंत्र आप पसंद कर सकते हैं किंतु कम-से-कम गुरुमंत्र की एक माला गुरु के ऋण का स्मरण करके अवश्य कीजिए ।

प्रश्न - गुरुमंत्र का त्याग करने में गुरु का द्रोह तो नहीं होता ?

उत्तर - बिलकुल नहीं । सब गुरु शिष्य की रुचि को ध्यान में रखकर मंत्र नहीं देते अतएव उस मंत्र को बदल सकते हैं । हाँ बदलने की क्रिया चंचलता से प्रेरित होकर बार-बार न होनी चाहिए । अन्यथा उसका कोई अर्थ न रहेगा । शंकाशील होकर जप करने की अपेक्षा जप बदलकर बिना संदेह के आगे बढ़ना अधिक अच्छा है । गुरुमंत्र नितांत त्याग करने की सलाह मैं नहीं देता । यह बात तो मेरे पूर्व उत्तर से आप जान गये होंगे ।

प्रश्न - श्रीमद् भगवद् गीता के द्वितीय अध्याय में कहा गया है कि योगस्थ होकर एवं अनासक्त बनकर कर्म करें । इससे मेरे मन में यह शंका पैदा होती है कि कर्म में दिलचस्पी, आसक्ति और तल्लीनता न रखें तो कर्म कैसे संभवित है ?

उत्तर - गीता के कथन को ठीक तरह से समझने से आपकी शंका दूर हो जाएगी । गीता यह नहीं कहती कि कर्म में रस, एकाग्रता या आसक्ति मत रखो । कर्म करते समय दिलचस्पी व तल्लीनता का अनुभव जरूरी है । गीता इसका विरोध नहीं करती परंतु वह तो एक और महत्वपूर्ण बात की ओर इंगित करती है कि कर्म करनेवाले व्यक्ति को कर्म के फलस्वरूप उत्पन्न हुई अहंता, ममता, आसक्ति एवं राग-द्वेष की वृत्ति से मुक्त रहना चाहिए । उसे उस कला में कौशल प्राप्त करना चाहिए । कर्म करो किंतु कर्म के संग या बंधन से मुक्त रहो । गीता यही कहना चाहती है । इस तरह समझेंगे तो आप कर्म को दिलचस्पी, एकाग्रता व पूरी लगन से करेंगे । फिर भी आप उसकी विघातक असर से मुक्त रहने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे ।

* * *

३७. उपदेश का अनुसरण

प्रश्न - मुझे एक प्रश्न बरसों से सता रहा है, वह यह कि भारतवर्ष में भूतकाल में अनेक श्रेष्ठ समर्थ महापुरुष हो गये हैं और आज भी वैसे साक्षात्कार-प्राप्त समर्थ पुरुष विद्यमान हैं फिर भी देश की हालत क्यों नहीं सुधरती ? देश में अतिशय दुःख, दर्द, छल-कपट, रिश्वतखोरी, अनीति एवं गरीबी का बोलबाला हैं फिर भी ऐसे समर्थ महापुरुष क्यों कुछ भी नहीं करते ?

उत्तर - अतीत काल में हुए और वर्तमान काल में विद्यमान संतुपुरुष दो प्रकार के हैं । कतिपय संतपुरुष अपनी प्रकृति एवं समझ के अनुसार केवल आत्मविकास की साधना में ही दिलचस्पी लेते हैं और उसी में रत रहते हैं और इसी में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं । वे जगत के लिये सक्रिय कार्य करने में नहीं मानते जबकि दूसरे प्रकार के संतपुरुष अन्य की सेवा में मानते हैं इतना ही नहीं दूसरों की यथाशक्ति यथाशक्य सेवा करने के लिये तत्पर रहते हैं । संतपुरुषों के इन दो भेदों को समझ लेने से आप अपने प्रश्न को अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

प्रश्न - वे भेद तो मेरी समझ में आ गये किंतु उनके ही संबंध में मैं पूछना चाहता हूँ कि दूसरे प्रकार के सेवाभावी, सेवापरायण संतपुरुष क्या संसार के विकृत वातावरण को बदल नहीं सकते ? क्या संसार को वे अधिक सुखमय या शांतिमय नहीं बना सकते ? वैसा करने के बजाय वे ऐसे सरिता तट पर या पर्वतों की प्रशांत गुफाओं में क्यों बैठे रहते हैं ?

उत्तर - जिस तरह आप सोचते हैं उस तरह सोचा जाय तो सर्वसमर्थ ईश्वर के लिए भी वही प्रश्न पूछने पडेंगे फिर भी संतपुरुषों की मर्यादा को वफादार रहकर यदि कहा जाय तो कह सकते हैं कि सभी सेवाभावी संत सरितातट या पर्वत की गुफाओं में नहीं रहते । वे बस्ती में हमारे बीच निवास करते हैं । वे संसार को अधिकाधिक सुख-शांतिमय बनाने की भरसक कोशिश करते हैं । वे संसार के विकृत वातावरण में आमूल परिवर्तन करने की साध रखते हैं किंतु इस इच्छा की पूर्ति क्या एकाएक बिना कुछ किए हो सकती है क्या ? एक हाथ से ताली नहीं बजती, समझे ?

प्रश्न - नहीं समझे ।

उत्तर - मतलब यह कि हमें भी प्रयत्न करना पडेगा । महापुरुषों की सेवा-पूजा करके या उनके गुणगान गा कर बैठे रहने के बजाय हमें उनके उपदेशों का आचरण करने के लिये कटिबद्ध होना पडेगा । उनके पास कोई जादूई लकडी नहीं है जिसके प्रयोग से वे सारे जगत को क्षणभर में बदल डाले । वे तो रास्ता दिखाते हैं । उस पर चलने का कार्य हमारा है । महर्षि व्यास से लेकर आजपर्यंत जो सन्त हुए हैं उन्होंने आदर्श जीवन का उपदेश हमें दिया है किंतु दुनिया ने उसका पालन शायद ही किया है । इसलिए गलती उनके उपदेश या प्रयत्न की नहीं किंतु उनको इमानदारी से ग्रहण और आचरण न करने की है । आचार की संहिता आज विस्मृत होती जा रही है । यही कारण है कि प्रजा के दुःखो में वृद्धि हुई है और अशांति एवं अनीति का साम्राज्य छा गया है । सृष्टि को सुखमय बनाने के लिए संतो के निर्देशित पथ पर उनके ज्ञानालोक से आगे बढने की आवश्यकता है । आइए उनके उपदेशों का जीवन में आचरण करें । जीवन और जगत की जड़ता इससे दूर हो जाएगी । * * *

३८. प्रकाश दर्शन

प्रश्न - जब मैं ध्यान में बैठता हूँ तो कभी-कभी मन शांत हो जाता है और प्रकाश का दर्शन होता है । वह क्या है ? वैसे प्रकाश-दर्शन से आह्लाद का अनुभव तो होता ही है किंतु यह शंका भी पैदा होती है कि मैं किसी गलत राह पर तो नहीं जा रहा हूँ न ? इस बारे में आपके पथप्रदर्शन की आवश्यकता है मुझे ।

उत्तर - आपका प्रश्न महत्वपूर्ण और उपयोगी है । ध्यान में बैठते वक्त आपको प्रकाश-दर्शन होता है यह अनुभव बहुत अच्छा है ऐसा निस्संदेह समझिए । ध्यान की प्रक्रिया में आप आगे बढ़े हैं इसका यह सबूत है । आपको इस बारे में शंकाशील बनने की जरूरत नहीं है । ध्यान की शांत अवस्था में कई साधकों को प्रकाश-दर्शन होता है और यह एक अच्छी निशानी है । ऐसा होने पर अपनी साधना पद्धति पर संशय करने के बजाय उत्साहपूर्वक आगे बढ़ना चाहिए । स्वामी विवेकानंदजी के जीवन को पढेंगे तो आपको पता चलेगा कि प्रकाश-दर्शन का अनुभव उनको भी हुआ था ।

प्रश्न - क्या वैसा अनुभव सभी साधकों को होता है ?

उत्तर - नहीं होता । प्रकाश-दर्शन का अनुभव अच्छा और सच्चा है परंतु सभी साधकों को नहीं होता यह अच्छी तरह से याद रखिए । ध्यानमार्ग में भिन्न भिन्न साधकों को नानाविध अनुभव होते हैं । इसलिए एक साधक को जो अनुभव होता है वह दूसरे को नहीं भी होता । इससे यह नहीं मान लेना है कि हमें होनेवाले अनुभव मिथ्या हैं । अपनी श्रद्धा को हमें बनाये रखना है । हमारे निजी अनुभवों का मूल्य हमारे लिए हमेशा रहता है ।

प्रश्न - प्रकाश-दर्शन का लाभ लेकर किस तरह आगे बढ सकते हैं ?

उत्तर - प्रकाश-दर्शन के अनुभवजन्य आनंद व उत्साह को द्विगुणित करके ध्यान में आगे ही आगे बढ़िये और प्रकाश के भी उस पार पहुँचकर प्रकाश के निर्माता उस परमतत्त्व की अपरोक्ष अनुभूति कीजिए । वहाँ तक ध्यान का अभ्यास करते रहिए । हमेशा हमेशा के लिए याद रखिए कि आपका ध्येय ईश्वर-साक्षात्कार ही है । उसकी प्राप्ति के पूर्व होनेवाले अनुभवों में इतिश्री समझकर रुकिए मत । अन्यथा अपनी तरक्की के मार्ग में आप ही रोड़े डालेंगे । प्रकाश-दर्शन का अनुभव तो एक साधारण अनुभव है । आगे बढ़ने पर दूसरे उच्चकोटि के अनेकों अनुभव होते रहेंगे । कतिपय विशेष शक्तियाँ या सिद्धियाँ हासिल होगी । विकास के क्रम में ये सब अनुभव सहज रूप में स्वतः होते रहेंगे । ये सब आपको उत्साह प्रेरणा और श्रद्धा प्रदान करे तो कोई आपत्ति नहीं । किंतु ये आपको अपने में बन्दी न बना दें इसका खयाल रखिए । प्रकाश के परम प्रकाश, और सिद्धि के स्वामी श्री परमात्मा ही आपके लिए प्राप्तव्य और ध्यातव्य है इस बात को कभी मत भूलें ।

* * *

३९. ध्यान करते वक्त आसन

प्रश्न - ध्यान करते वक्त किसी निश्चित आसन में ही बैठना चाहिए या किसी भी आसन में बैठ सकते हैं ? मैं तो प्रयत्न करने पर भी पद्मासन में बैठ नहीं सकता तो पद्मासन के बिना चल सकता है या नहीं ?

उत्तर - पद्मासन के बिना चलेगा । योग के ग्रन्थों में कहा गया है कि ध्यान करते समय पद्मासन, स्वस्तिकासन या सिद्धासन का आधार लेना चाहिए । स्वास्थ्य की दृष्टि से ये आसन अच्छे हैं और मन की एकाग्रता में सहायक हैं । फिर भी जो उनको सिद्ध न कर सके वह ध्यान कर ही न सके ऐसा नहीं समझना है । महर्षि पतंजलि ने अपने योगदर्शन में आसन की परिभाषा देते हुए कहा है - जो स्थिरता व सुख का अनुभव कराये उस बैठने की पद्धति को आसन कहते हैं । इस दृष्टि से सोचा जाय तो उन्होंने पद्मासन जैसे किसी विशेष आसन का समर्थन नहीं किया । आप अगर पद्मासन में बैठ सकते हैं तो अच्छा है किंतु यदि बैठा न जाये तो सुखासन का प्रयोग कर सकते हैं । याद रखें, ध्यान में आसन का उतना महत्व नहीं जितना मन की एकाग्रता या स्थिरता का है । हमें उसकी सिद्धि की ओर ही ध्यान रखना चाहिए ।

प्रश्न - ध्यान के लिए उत्तम समय कौन सा है ?

उत्तर - प्रातःकाल, संध्याकाल या फिर मध्यरात्रि के बाद का समय ध्यान के लिये उत्तम है । उस वक्त वातावरण नितांत शांत होता है । उस वक्त ध्यान करने से मन आसानी से स्थिर हो जाता है । इसीलिए उसे उत्तम माना गया है । बाकी मन को शांत करने की साधना में सहायक हो ऐसे किसी भी अनुकूल समय में ध्यान किया जा सकता है ।

प्रश्न - सगुण ध्यान उत्तम है या निर्गुण ?

उत्तर - दोनों प्रकार के ध्यान उत्तम एवं उपकारक हैं । मनुष्य की रुचि को ध्यान में रखकर उनका निर्माण किया गया है इसलिए उत्तम और निकृष्ट की बहस मत कीजिए । आपकी प्रकृति के अनुसार आपको जो अनुकूल लगे उसका आश्रय लेकर आगे बढ़िये । यही उचित है ।

प्रश्न - ध्यान या जप करते वक्त नींद आती है उसका क्या कारण है ?

उत्तर - पर्याप्त आराम के अभाव में कभी नींद आ जाती है तो कभी मात्रा से ज्यादा भोजन लेने से भी ऐसा होता है । कभी कभी मन की दुर्बलता के कारण भी निद्रा का अनुभव होता है । कुछ भी हो किंतु ध्यान या जप के लिये यह स्थिति आशीर्वाद समान नहीं है इसमें कोई सन्देह नहीं । इसलिए उससे छूटकारा पाने के लिये पर्याप्त निद्रा लेने के बाद ही ध्यान या जप करने के लिए बैठिये । रातको जल्दी और सूक्ष्म भोजन लेना चाहिए । जब सुस्ती, निद्रा या आलस्य जैसा लगे तो मुँह धोकर कुछ समय चहल-कदमी कीजिए और बाद में कुछ समय तक खुली आँख रखकर जप या ध्यान कीजिए । इस तरह करने से धीरे धीरे नींद की शिकायत दूर हो जायेगी ।

* * *

४०. प्लानचेट

प्रश्न - क्या प्लान्चेट द्वारा मृतात्माओं के साथ संबंध स्थापित किया जा सकता है ?

उत्तर - हाँ, यह बात सच है । प्लानचेट एक विद्या है, जिसके द्वारा मृतात्माओं के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकते है । भारत में ही नहीं, पाश्चात्य देशों में भी इस विद्या का प्रचार है और कई लोग इसमें दिलचस्पी लेते हैं । इसमें रुचि रखनेवाले लोगोंने अपने स्वानुभव पर आधारित पुस्तकें या लेख लिखे हैं जो अत्यंत दिलचस्प और रोचक है । क्या आप भी प्लानचेट विद्या में दिलचस्पी रखते हैं ? क्या आप उसका प्रयोग करते है ?

प्रश्न - प्रयोग तो नहीं करता किंतु एक परिचित सज्जन प्रयोग करते हैं उनके साथ मेरा संबंध है । सप्ताह में एक बार हम उनके यहाँ इकठ्ठे होते हैं । वे दूसरे दो-तीन आदमियों के सहारे प्रयोग कर दिखाते हैं । वे हमारी इच्छा के अनुसार मृतात्माओं को बुलाकर उनके पास हमारे प्रश्नों के उत्तर दिलवाते हैं । मृतात्मा उत्तर देकर चले जाते हैं । कभी वे अपने सूचन देते हैं तथा गूढ एवं गुप्त रहस्य भी बतलाते हैं । इससे आश्चर्य होता है ।

उत्तर - आप यह सब देख दंग रह जाय, यह सच है और सही अर्थ में कहें तो यह विद्या ही अजीब तरह की है । माध्यम बननेवाले मनुष्यों के द्वारा इस विद्या का जो प्रदर्शन होता है उसमें गुप्तता या रहस्यमयता की कोई बात नहीं है । जो कुछ होता है वह खुलेआम ही होता है । हाँ कैसे होता है यह भेद की बात है । कुछ लोगों का यह कहना है कि उसके द्वारा मनुष्य के सुषुप्त भावविचार या संस्कार ही प्रकट होते हैं । हाँ, किंतु वह कैसे प्रकट होते हैं ? इसके पीछे कोई शक्ति अवश्य होगी । उस शक्ति के कारण ही लकडी के टेबल पर चोट लगती है और प्लान्चेट का प्रयोग सफल होता है ।

प्रश्न - इस पर से यही सिद्ध होता है कि मृतात्माओं को बुलाया जा सकता है ?

उत्तर - सिद्धांत की दृष्टि से इस बात को सच मानना अनुचित नहीं । किंतु व्यावहारिक रूप में दूसरे कई प्रश्न विचारणीय है । मान लीजिए कि मृतात्माओं को बुलाया जा सकता है तो भी उनको बुलाने से आपका या बुलानेवाले का कोई श्रेय होता है ? अपने कल्याण के लिये अगर वे कोई जानकारी दे; सूचना या युक्ति प्रदर्शित करें तो भी वे उनकी इच्छा अनुसार बर्ताव करने के लिये सर्वथा स्वतंत्र है । उनके द्वारा प्राप्त पथप्रदर्शन सच्चा ही होगा यह नहीं कहा जा सकता । कभीकभी तो वे बेबुनियाद बातें करते हैं और गलत जानकारी देते हैं । उसको सच मानकर इतमीनान से आगे बढ़ा जाये तो नुकसान होने का संभव है ।

प्रश्न - तो क्या यह मान लूँ कि आप को प्लान्चेट की विद्या में दिलचस्पी नहीं हैं ?

उत्तर - प्लान्चेट की विद्या दिलचस्प है किंतु उसे सर्वोत्तम मानकर उसमें डूब जाने में कोई बुद्धिमानी नहीं है । इस विद्या से जीवन का आत्यंतिक कल्याण नहीं होता । परम कल्याण के लिये तो दूसरी सब विद्याओं को गौण समझकर केवल अध्यात्मविद्या का ही सहारा लेना पड़ेगा । अगर जीवन का चरम श्रेय चाहते हैं तो आप अपने हृदय के भीतर गोता लगाईए और मृतात्माओं के साथ नहीं,

जीवित परमात्मा के साथ नाता जोड़िये । उसका पथ-प्रदर्शन लीजिए और उसके साथ घनिष्ठ संबंध रखिए । अगर आप ईमानदारी व आत्मविश्वास के साथ प्रयत्न करेंगे तो आखिरकार आप आत्मशक्ति की चरमसीमा पर पहुँच जायेंगे । दूसरी विद्याएँ तो जीवन के सच्चे आदर्श को भुला देनेवाली हैं । आप भी यदि जीवन के आदर्श को विस्मृत कर देंगे तो आपको बड़ी भारी हानि होगी, यह अच्छी तरह याद रखें । अगर आप शांति, मुक्ति और पूर्णता की कामना रखते हैं तो ईश्वर-साक्षात्कार को ही अपने जीवन का मकसद बनायें । इसीमें आपकी भलाई है ।

प्रश्न - आपने प्लानचेट के बारे में जो कहा उससे मेरे मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई है । थोडे समय पहले मेरे एक स्वजन का देहांत हो गया । क्या प्लानचेट के प्रयोग के द्वारा वे कहाँ गये होंगे यह जाना जा सकता है ? मैं उनका सम्पर्क करना चाहता हूँ । अगर आप ऐसा प्रयोग करनेवाले व्यक्ति का नामनिर्देश करेंगे तो मुझे लाभ होगा ।

उत्तर - आप अपने मृत स्वजन का संपर्क क्यों स्थापित करना चाहते हैं ? मैं तो मानता हूँ कि आपको यह विचार ही छोड़ देना चाहिए । कभीकभी कोई दूसरे ही हमारे स्वजन का स्वांग लेकर प्लानचेट पर उपस्थित होते हैं । उन्हें आप कैसे पहचान सकेंगे ? और मान लीजिए यदि आप उन्हें पहचान सकते हैं तो भी वे स्वजन आपसे बिछड़ गये हैं और कर्म-सिद्धांत के अनुसार उनका निवास दूसरी जगह पर हुआ है । उन्हें बुलाकर उनकी शांति में विघ्न डालने का कार्य उचित नहीं है । मृत्यु ने उन्हें आपसे दूर किया है । आपका उनके प्रति जो अनुराग है, ममता है, उसे दूर कीजिए । सुखी होने का यही सच्चा उपाय है । जन्मांतर में आपने ऐसे तो कई संबंध स्थापित किये है, जो आज नहीं रहे । इस तरह इस संबंध से भी लगाव रखने की जरुरत नहीं है । यह संसार नश्वर है । अगर इसमें कोई सनातन है तो वह ईश्वर ही है । वही हमारा सच्चा स्वजन और हितैषी है । इस बात को अच्छी तरह याद करके जीवन को ईश्वरमय बनाने से ही लाभ होगा । राग नहीं अपितु वैराग्य, ममता नहीं, निर्ममता ही और प्लान्चेट जैसे सामान्य प्रयोग नहीं किंतु ईश्वर के साथ योग का असाधारण अनुभव ही हमें शांति देगा ।

* * *

४१. सबकी मुक्ति में अपनी मुक्ति

प्रश्न - कुछ लोकसेवक, नेतागण एवं राजपुरुष मुक्ति के लिए की जानेवाली साधना को स्वार्थी मानते हैं और कहते हैं कि मनुष्य को समाज की सेवा करने के लिए आगे आना चाहिए । यही सच्चा धर्म है और सबकी मुक्तिमें ही मनुष्यकी अपनी मुक्ति है । इस बारे में आपकी क्या राय है ? वैयक्तिक मुक्ति या विकास की साधना क्या स्वार्थी या संकुचित विचार से प्रेरित साधना है ऐसा आपको नहीं लगता ? उनको यह साधना पसन्द ही नहीं है इतना ही नहीं उसके प्रति उनकी तीव्र नफरत है ।

उत्तर - यदि नफरत है तो उसमें उसका अज्ञान निहित है । किसी प्रकार के पूर्वग्रह से प्रेरित होकर अगर वे साधना के बारे में सोचेंगे तो नतीजा यही आएगा । लेकिन अगर वे पूर्वग्रह से मुक्त होकर विशाल एवं तटस्थ दृष्टि से सोचेंगे तो उनको अपनी गलती समझमें आ जाएगी यह बात बिलकुल स्पष्ट है ।

प्रश्न - वह कैसे ? वे लोग तो अपने विधान पर ही डटे रहेंगे ।

उत्तर - इससे क्या हुआ ? मुक्ति या आत्मविकास की साधना स्वार्थी या संकुचित दृष्टि से प्रेरित है ऐसा मैं नहीं मानता । भारतीय संस्कृतिने जीवन की सफलता के लिए जो मंत्र दिया है उसमें दो प्रकार के भाव समाविष्ट है । एक भाव तो *'स्वान्तः सुखाय'* का है अर्थात् अपने निजी जीवनको अधिक से अधिक सत्वशील, उदात्त तथा उत्तम बनाना और आत्मिक शांति प्राप्त करना । दूसरा भाव *'परजनहिताय'* का है अर्थात् दूसरों के हित के लिए काम करना । इन दोनों भावों को जीवन में ओतप्रोत करना है, तभी पूर्ण और सफल जीवन की प्राप्ति होगी । ये दोनों भाव परस्पर विरोधी नहीं अपितु सहायक है और पंछी के पर की भाँति जीवन से अभिन्न है । इन दोनों भावों को जीवन में मूर्त (साकार) बनाने का प्रयास किया जाये तो व्यक्तिगत या समष्टिगत जीवन सुखमय, शांतिमय और सर्वोत्तम बन सके । तंदुरस्त या सुसंस्कृत समाज इन दोनों भावोंमें से किसी एक भाव की उपेक्षा न कर सके और उसके प्रति उदासीन न हो सके ।

प्रश्न - आपने इन दोनों भावों को ओतप्रोत या अभिन्न बताये, ये देख मुझे अचरज हुआ क्योंकि इन भावों को बिलकुल अलग या विभिन्न माना जाता है ।

उत्तर - इस मान्यता में मुझे विचारदोष मालूम होता है । यह मान्यता अधूरी एवं हानिकर है । इस मान्यताने समाज का बेसुमार नुकसान किया है अतएव उसका त्याग करना चाहिए । इस मान्यता में भारतीय संस्कृति का सही सन्देश समाविष्ट नहीं हुआ है । इस सन्देश अनुसार चले तो जीवन का स्वरूप ही बदल जाय और अलग ही हो जाए । क्या आप नहीं जानते कि आत्मशुद्धि या आत्मविकास से रहित सेवकों में अहंता, स्वार्थवृत्ति, भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति की लालसा, स्पर्धा और पदप्रतिष्ठा की कामना होती है ? फिर दूसरे लोग भी उसी तरह सोचने लगते है । इससे जनजीवन प्रभावित होता है और फलतः समाज की सुरक्षामें बाधा उत्पन्न होती है । उन्हें वैयक्तिक साधना करके निजी व समाज के श्रेय के लिए शुद्धि प्राप्त करने की आवश्यकता है । इससे विपरीत, जीवन में आत्मविकास को ही सर्वस्व माननेवाले लोगों को अपनी प्राप्त परिस्थितियों में रहकर निजी उन्नति करने के साथ ही, दूसरों को

सहायता करने की कोशिश करनी चाहिए । जीवन और जीवन का जो कुछ प्राप्तव्य है वह सब अपने वैयक्तिक लाभ, विकास एवं मोक्ष की सिद्धि के साथसाथ समाज के कल्याण एवं समृद्धि के लिए भी है इतना सत्य उन्हें समझ लेना चाहिए । अगर ऐसा हो जाए तो ये दोनों भाव या उसकी विचारधारा के बीच का विरोध टल सकता है । इससे दोनों भावों के प्रति या किसी एक के प्रति जो नफरत है वह मिट जाए, दोनों को एक समान समझकर उनके प्रति आदरभाव हो सके और व्यक्ति या समष्टि के प्रति दोनों महत्वपूर्ण योगदान दे सके ।

* * *

४२. आत्मसाक्षात्कारी संतो का समागम

प्रश्न - वर्तमान भारत में आत्मसाक्षात्कार प्राप्त अथवा योगसाधना द्वारा सर्वोत्तम सिद्धि-प्राप्त महात्मा-पुरुष विद्यमान हैं या उनका सर्वथा अभाव है ? आजसे कुछ साल पहले पोल ब्रन्टन महोदय भारतवर्ष की मुलाकात के लिये आये थे । उन्होंने कतिपय कृतकाय महापुरुषों के दर्शन किये थे जिनका उल्लेख उन्होंने अपनी *'सर्च इन सिक्रेट इन्डिया'* नामक किताब में किया है । ऐसे लोकोत्तर पुरुष आज भारत में मौजुद हैं क्या ? वक्त के गुजरने के साथ वे विलीन तो नहीं हो गये हैं न ?

उत्तर - नहीं, वे विलीन नहीं हो गये अपितु आज भी हैं । ऐसे लोकोत्तर पुरुषों का अस्तित्त्व भारत में हमेशा से रहा है । इसीके कारण भारत स्तुत्य रहा है । आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति करनेवाले, चिंतनशील एवं स्वानुभवसंपन्न, शास्त्र तथा जीवनोत्कर्ष की साधना के साकार स्वरुप समान संतपुरुषों के कारण भारतभूमि यशस्वी है, गौरवान्वित है, यह कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है । पोल ब्रन्टन जिन महापुरुषों से मिले थे वे तो विशाल जलधि की कुछ उत्तुंग लहरें थी । इससे देशमें उस वक्त उतने ही कृतकाम संतपुरुष थे ऐसा हमें नहीं समझना है । दूसरे कई संतमहात्मा उस समय इस देशमें विद्यमान थे और आज भी हैं । उनका सर्वथा अभाव कभी भी नहीं रहा और आज भी नहीं है । अगर उनके दर्शन की उत्कट अभिलाषा कोई करे तो वह उनके दर्शन आज भी कर सकता है और उनसे उचित पथ-प्रदर्शन भी प्राप्त कर सकता है ।

प्रश्न - ऐसे कृतकाम महापुरुषों का समागम केवल इच्छा करने से ही हो सकता है या इसके लिए कोई विशेष प्रयत्न करना पड़ता है ?

उत्तर - क्या आप नहीं जानते कि तीव्र इच्छा में कितना सामर्थ्य है ? प्रबल इच्छा या उत्कट अभिलाषा के राज़ को यदि आप जानते होते तो ऐसा प्रश्न कभी नहीं पूछते । तीव्र इच्छा का मानी है अंतरमन में से आविर्भूत अनिवार्य, अमिट एवं अनवरत अभीप्सा । उसे ही लगन या तरस कहते हैं । अगर वह किसी तरह जग जाये तो महापुरुषों की मुलाकात अवश्य हो जाए । इसके अलावा दूसरा कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना है । या यूँ कहो कि दूसरे छोटे-मोटे प्रयास हों उनके मूल में अदम्य एवं अति उत्कट इच्छा होनी चाहिए तभी अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति हो सकेगी । ऐसे महापुरुषों के मिलाप के लिए आपको पोल ब्रन्टन की तरह भारत वर्ष की चारों दिशाओं में घूमना ही पड़ेगा ऐसा नहीं है । इच्छा उत्कट हो जाने पर, हृदय उनके दर्शन के लिए लालायित होने पर, और साधना की निश्चित भूमिका पर आरूढ होने पर आपको कृतार्थ या सफल मनोरथ बनाने के लिए वे खुद आपके सामने प्रकट हो जाएँगे और आपको शांति प्रदान करेंगे । विकास की निश्चित कक्षा पर पहुँचने के बाद आप में और उनमें ऐसा अंतरंग संबंध प्रस्थापित हो जाएगा कि वे आपको बार-बार अथवा तो इच्छानुसार मिलते रहेंगे । उस वक्त आपको अवर्णनीय आनंद होगा ।

प्रश्न - आप कहते हैं विकास की अमुक कक्षा पर पहुँचने के बाद महापुरुषों से संबंध स्थापित हो जाएगा तो वह विकास कैसा होगा उसकी रुपरेखा बताएँगे आप ?

उत्तर - उस विकास में हृदयशुद्धि और उत्तमोत्तम आत्मिक जीवन गुज़ारने की अभीप्सा का समावेश होता है । प्रेमलक्षणा भक्ति भी इसमें योग दे सकती है । अगर आपको योग में दिलचस्पी हो तो संप्रज्ञात समाधि तक पहुँचना चाहिए । ध्यान के नियमित अनवरत अभ्यास के परिणाम स्वरूप प्राप्त समाधि आपके अतीन्द्रिय द्वारको खोल देगी और आपको अनेक असाधारण अनुभव होंगे । फिर आपको लोकोत्तर महापुरुषों का समागम होगा । हाँ, इसके लिए जीवन को सच्चे अर्थ में आध्यात्मिक या साधनामय बनाने की कोशिश करें तभी यह संभव हो सकेगा । केवल बातों से कुछ नहीं होगा ।

* * *

४३. खेचरी मुद्रा और शांभवी मुद्रा

प्रश्न - खेचरी मुद्रा का मतलब क्या होता है ? वह प्रारंभिक अवस्था के साधक को किस तरह सहायक होती है ?

उत्तर - खेचरी मुद्रा एक कठिन मुद्रा है जो जीभ की सहायता लेकर की जाती है । जीभ दो प्रकार की होती है - छोटी और लम्बी । छोटी जीभवाले साधक को घर्षण, दोहन जैसी क्रियाओं का आधार लेकर अपनी जीभ को लम्बी करनी पड़ती है । उसके बाद जीभ को पलटाकर या उल्टा करके ताल या तालुप्रदेश पर लगानी पडती है । लम्बी हुई जीभ जब तालु पे लगती है तब एक तरह का मतवाला और बढ़िया स्वाद का अनुभव होता है । प्राणवायु का स्तंभन होने के कारण तथा चित्तवृत्ति का लय होने से समाधि अवस्था का अनुभव होता है । इस अवस्था या मुद्रा का अभ्यास जैसे जैसे बढ़ता जाता है वैसे वैसे अनेक प्रकार की शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है । हालाकि इस मुद्रा की सिद्धि के लिए दीर्घकाल पर्यंत सोत्साह अभ्यास करना आवश्यक है । तदुपरांत अनुभवी सदगुरु के पथप्रदर्शन की भी आवश्यकता रहती है । इतनी जानकारी के बाद आप समझ गये होंगे कि खेचरी मुद्रा की साधना प्रारंभिक साधकों के लिए नहीं है । योगसाधना में भली भाँति तरक्की हासिल किए हुए साधक का ही यह काम है ।

योगसाधना की प्रारंभिक अवस्था में साधक को सदाचारी जीवन जीने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए । इसके साथ ही आसन, प्राणायाम या ध्यान की साधना करनी चाहिए और शांति, शक्ति या प्रेरणा प्राप्त करने के हेतु सत्संग एवं प्रार्थना का नियमित रुप से आधार लेना चाहिए ।

प्रश्न - शास्त्रों में जिसे शांभवी मुद्रा कहा गया हैं वह क्या है ? यह मुद्रा कैसे की जाती है ? मतलब इसका अभ्यास किस तरह से हो सकता है ?

उत्तर - मुद्रा शब्द का प्रयोग एवं मुद्राओं के वैज्ञानिक अभ्यासक्रम का स्वीकार भक्ति एवं ज्ञानमार्ग में नहीं किया गया है किंतु योगमार्ग में योगसाधना में निपुण आचार्यों के द्वारा किया गया है । शांभवी मुद्रा का उल्लेख भी इसमें समाविष्ट है । तड़ागी, खेचरी, योनि तथा महामुद्रा की भाँति शांभवी मुद्रा भी एक महत्वपूर्ण मुद्रा है जिसका उल्लेख योगविद्या के प्राचीन ग्रंथो में किया गया है ।

शांभवी मुद्रा का अभ्यास करने की तमन्नावाले साधक को पद्मासन जैसे किसी विशिष्ट आसन में बैठना चाहिए । तत् पश्चात् बाह्य तर्क-वितर्कों या विचारों से जितना हो सके उतना मुक्त होकर आँखें दोनों भ्रमर के मध्य प्रदेश में अर्थात् योग की परिभाषा में आज्ञाचक्र में स्थिर एकाग्र करनी चाहिए ।

प्रश्न - शांभवी मुद्रा का अभ्यास करते वक्त आँखे खुली रखनी है या बन्द ?

उत्तर - खुली रखना क्योंकि शांभवी मुद्रा आँखे खुली रखकर ही की जा सकती है ।

प्रश्न - इसी तरह कितना समय तक बैठे रहना है ?

उत्तर - इसका आधार साधक की रुचि, दिलचस्पी या अनुकूलता पर रहता है फिर भी इसका अभ्यास करते वक्त जितना भी अधिक समय एक ही आसन में बैठ सके उतना ही अच्छा रहेगा ।

प्रश्न - लेकिन ज्यादा समय तक बैठने पर आँख में दर्द नहीं होगा क्या ?

उत्तर - शुरु शुरु में आँख दुखेगी परन्तु बाद में अभ्यास बढ़ता जाएगा फिर आँख में दर्द नहीं होगा । आँख दूखे तब थोड़ा समय अभ्यास छोड़ देना, आँखें बन्द रखना और आराम फरमाना । आराम हो जाने पर फिर अभ्यास प्रारंभ कर देना । इसमें कोई हर्ज नहीं ।

प्रश्न - ऐसे अभ्यास के कारण आँख में पानी पडे तो ?

उत्तर - तो क्या? पडने देना । प्रारंभ में पानी पडेगा । बाद में अभ्यास बढ़ने पर ऐसा नहीं होगा ।

प्रश्न - शांभवी मुद्रा का अभ्यास करते वक्त मनको दोनों भ्रमर के बीचमें स्थिर करते वक्त नामजप कर सकते हैं क्या ?

उत्तर - अवश्य कर सकते हैं । अगर साधक को नामजप करने में दिलचस्पी हो तो जरुर कर सकते हैं ।

प्रश्न - यदि नामजप ना करना हो तो क्या करें ?

उत्तर - नजर को दो भ्रमर के मध्य प्रदेश में स्थापित करके शांति से बैठे रहना और ध्यान करना । शांभवी मुद्रा मनकी विषयगामी बाह्य वृत्ति को प्रतिनिवृत्त करके ध्यान में लगानेवाली मुद्रा है । इसका वर्णन करनेवाले अनुभवसिद्ध आचार्यों ने बताया है कि इस मुद्रा में आँख खुली हो फिर भी मन बाह्य पदार्थों या विषयों में नहीं भटकता । मन की वृत्ति क्रमशः शांत हो जाती है और अन्त में बिलकुल शांत होने पर आँख खुली होती है फिर भी कुछ नहीं देखती । शांभवी मुद्रा साधक को विचारों, विकारों एवं विषयों के उस पार के प्रशांत प्रदेश में प्रवेशित कराती है ।

प्रश्न - उसका महत्वपूर्ण लाभ क्या है ?

उत्तर - मन की परमशांति की अवस्था या समाधि की उपलब्धि, इसके लिए ही वह की जाती है । इसीलिए योग की सुप्रसिद्ध साधना में उसकी महिमा अद्‌वितीय मानी जाती है ।

प्रश्न - दो भ्रमरों के मध्य में दृष्टिको इस तरह स्थिर करके ध्यान या नामजप करें यह ठीक है अथवा आँख बन्द करके करें ?

उत्तर - उत्कट उमंग और उत्साहवाले उच्च कोटि के प्रयोगशील साधकों की बात ही ओर है । वे यदि शांभवी मुद्रा का आधार लेकर दोनों भ्रमर के मध्य प्रदेश में दृष्टि को स्थिर-एकाग्र करके ध्यान या जप करेंगे तो चलेगा । इससे उनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा लेकिन अन्य सर्वसाधारण साधकों की दृष्टि से सोचा जाए और उत्तर दिया जाए तो कह सकते हैं कि विशेषतः उनके लिए जप या ध्यान करते समय शांभवी मुद्रा करना उचित न होगा । हम उनको इस मुद्रा करने की सिफारिश नहीं कर सकते । उनके लिए तो आँखे बन्द करके जप या ध्यान के अभ्यास का विधिपूर्वक अभ्यास करना उचित होगा । उससे उनका मन आसानी से स्थिर या एकाग्र हो जाएगा । सिर्फ मुद्रा का अभ्यास करना चाहे तो उसका

अभ्यास कर सकते हैं । बाकी आत्मविकास की साधना में तरक्की करने और आत्मशांति की अनुभूति के लिए उसके अभ्यास की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है ।

* * *

४४. आत्मानुसंधान और भक्ति

प्रश्न - आत्मा का अनुसंधान श्रेष्ठ है या भक्ति ? अर्थात् भगवान की भक्ति उत्तम है या आत्मा का चिंतन-मनन या ध्यान करना उत्तम है ?

उत्तर - आपने बहुत अच्छा और अलग तरह का प्रश्न पूछा है । इसके जवाब में मैं यही कहना चाहुँगा कि दोनों श्रेष्ठ हैं और एक समान आशीर्वादरूप एवं उपयोगी है । इनमें से कोई अधिक उत्तम है ऐसा नहीं है । साधक को इन दोनों में से क्या ज्यादा पसन्द आएगा यह उसकी रुचि पर आधारित है । वह अपनी रुचि के मुताबिक किसी एक को या दोनों को पसन्द कर सकता है लेकिन दोनों का महत्व एक समान है ।

शंकराचार्यजी तो आत्मानुसंधान की प्रवृत्ति को ही भक्ति मानते हैं । उनका कहना है कि स्व-स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति है । इसके द्वारा मनुष्य अपने आत्मा या परमात्मा को ही भजता है । भक्ति को आप अलग मानते हैं तो भी इनमें से एक उत्तम और दूसरा अनुत्तम है ऐसा मानना गलत है । आपकी फितरत के मुताबिक आप जिसे पसन्द करेंगे और उसका आधार लेंगे तो वह आपके लिए सर्वोत्तम हो जाएगा और आपका आत्मविकास करनेवाला साबित होगा ।

प्रश्न - आत्मविचार एवं भक्ति अथवा आत्मानुसंधान एवं भक्ति - इन दोनों के परिणाम एक ही है या भिन्न भिन्न ?

उत्तर - आत्मानुसंधान से क्या लाभ होता है ? इससे मन की स्थिरता सिद्ध होती है और फलतः परमात्मा का साक्षात्कार सहज होता है । इससे परम शांति की प्राप्ति भी हो सकती है । इसी तरह भक्ति द्वारा आप क्या हासिल करना चाहते हैं ? इसके अनुष्ठान से भी मन एकाग्र होता है, शांत हो जाता है और ईश्वर-साक्षात्कार की अनुभूति भी कर सकते हैं । हाँ, यह सच है कि वह साक्षात्कार सगुण होता है परंतु यह भी साक्षात्कार ही है । अर्थात् भक्ति एवं आत्मानुसंधान के साधन भिन्न भिन्न होने पर भी इन दोनों का परिणाम एक ही है ।

प्रश्न - तो फिर भक्ति एवं आत्मानुसंधान के साधन में भेद किस प्रकार है ?

उत्तर - आत्मानुसंधान में पहले से ही आत्मा को लक्ष्य बनाकर, आत्मा में मन लगाकर, वृत्ति को अंतर्मुख या आत्माभिमुख करके चलना होता है जब कि भक्ति की साधना में मन को ईश्वर की सेवा-पूजा एवं ईश्वर के नाम-स्मरण में जुटाना पड़ता है । भक्ति में भक्त ईश्वर के लिए रोता है, तड़पता है, बेचैन होता है और लगातार प्रार्थना में लीन होता है । आत्मानुसंधान की साधना में अभिरुचि रखनेवाला साधक अपना ज्यादातर वक्त ध्यान में बिताता है तथा मन व बुद्धि तथा देशकाल से परे के प्रदेश में पहुँचने का प्रयत्न करता है । इसी तरह दोनों के साधन में बाह्य दृष्टि से देखने पर भेद नजर आता है पर वास्तव में कोई अंतर नहीं है ।

* * *

४५. भक्ति की साधना

प्रश्न - भक्ति की साधना को सर्वोत्तम क्यों कहा जाता है ? ज्ञान एवं योग की साधना से उसका स्थान क्या उँचा है ?

उत्तर - ज्ञान और योग की साधना से उसका स्थान उँचा है ऐसा तो कैसे कहें ? ज्ञान, भक्ति एवं योग - इन तीनों प्रकार की साधना साधना ही है । इनमें से कोई उत्तम और दूसरी अधम, कोई असाधारण है या साधारण ऐसा प्रश्न ही नहीं है । सभी साधना एक समान उपयोगी है और एक समान शक्ति एवं शक्यता युक्त है । अर्थात् सभी साधनाओं के प्रति समान आदर से देखने की आवश्यकता है । भक्ति की साधना को सर्वोत्तम माना जाए तो भी योगीजन योग-साधना को और ज्ञानीजन ज्ञान की साधना को इसी तरह सर्वोत्तम मानते हैं । इसका कारण यह है कि उनका इन साधनाओं के बारे में प्रेम और आदरभाव है । इसलिए किसीको भी उँच-नीच के व्यर्थ वादविवाद में नहीं उलझना है और साधक को तो बिलकुल भी नहीं ।

प्रश्न - तो फिर भक्ति सब साधनाओं में उत्तम है ऐसा कहने की प्रणाली कैसे पड़ गई ?

उत्तर - उसका कारण जरा अलग है । भक्ति में योग या ज्ञान जैसे अन्य साधनाओं की तुलनामें जो ध्यान देने योग्य विशेषताएँ हैं वही उसमें कारणभूत है । इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखकर देवर्षि नारद प्रभृति महान, महासमर्थ ईश्वर-कृपापात्र संतने अपने भक्ति-सूत्रों में 'सा तु ज्ञानकर्मेभ्योडधिकतरा' लिखा है । अर्थात् भक्ति ज्ञान, योग एवं कर्म की अपेक्षा अधिक है ऐसा कहकर भक्ति की महिमा बताई है ।

प्रश्न - उन विशेषताओं का जिक्र करेंगे आप ?

उत्तर - अवश्य, उनका संक्षेप में बयान हो सकेगा । भक्ति की साधना की सबसे प्रथम विचारयोग्य विशेषता यही है कि भक्ति सर्वसुलभ है । बच्चे बूढ़े सभी उसका आधार ले सकते हैं । योग की साधना ज्यादातर नौयुवकों के लिए ही है । तदुपरांत उसमें निरामय निरोगी लोगों का काम है । उसमें आहार-विहार के सख्त नियमों का पालन भी करना पड़ता है । ज्ञान की साधना भी प्रायः चिंतनमनन में निपुण मेधावी पुरुषों के लिए ही है लेकिन भक्ति के साधनारूपी मंगल मंदिर के द्वार तो तीव्र बुद्धिवाले एवं सामान्य बुद्धिवाले, रोगी एवं निरोगी, सभी के लिए खुले हैं । इसका लाभ सब लोग ले सकते हैं । इसमें आहार विहार के सख्त नियमों का पालन भी नहीं करना पड़ता । इस साधना का अभ्यासक्रम इतना जटिल भी नहीं है । वह तो सीधा, सरल और सुस्पष्ट है । इसमें बाह्य त्याग का महत्व भी बहुत कुछ न होने से लौकिक व्यवहार में रहकर भी अपने कर्तव्य का पालन करते हुए मनुष्य उसका आधार ले सकता है । इस दृष्टि से देखने पर आजके कर्मप्रधान युग के लिए उसके जैसा अनुकूल साधनामार्ग दूसरा कोई नहीं है । ज्ञान एवं योग की अनुभूति भी उसके अनुष्ठान से स्वतः मिल जाती है । इस अर्थ में आप भक्ति को उत्तम कह सकते हैं ।

* * *

४६. ज्ञान भक्ति एवं योग

प्रश्न - भक्ति के अनुष्ठान से ज्ञान एवं योग दोनों का आस्वाद मिल जाता है, वह कैसे ?

उत्तर - यह हकीकत है जिसे शांतिपूर्वक सोचने से आसानी से समझ सकते हैं । भक्ति की साधना करते हुए धीरे धीरे हृदय की निर्मलता की प्राप्ति होती है । जैसे जैसे निर्मल हृदय में परमात्मा का प्यार पैदा होता है वैसे वैसे भक्त परमात्मा के निकट पहुंचता जाता है और वह एक ऐसी दशा को प्राप्त करता है जहाँ जड़ और चेतन सब में उसे परमात्मा की झांकी होती है । संसार के सभी पदार्थों में उसे ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव होने लगता है । संसार के भिन्न भिन्न पदार्थों की बाह्य विभिन्नता के भीतर स्थित आत्मा की अखण्ड अभिन्नता का वह दर्शन करता है और ज्ञान के सर्वात्मभाव के प्रदेश में पहुँच जाता है ।

भक्त शिरोमणि नरसिंह महेता ने ज्ञान की पवित्र भूमिका पर पहुंचकर स्वाभाविक रूप से लिखा है 'अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्री हरि जुजवे रूप अनन्त भासे ।' अर्थात् समस्त ब्रह्मांड में विभिन्न रूप में हे हरि, केवल तू ही तू भासित हो रहा है । इससे विशेष ज्ञान और क्या हो सकता है ? आत्मज्ञान व तत्वज्ञान का यही सार है, यही निष्कर्ष है । उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए भक्त को ज्ञान की कोई पोथी नहीं पढ़नी पडती है । वह ज्ञान तो उसके अंतर में से स्वतः आविर्भूत होता है । उसकी अनुभूति उसे खुद-ब-खुद हो जाती है ।

प्रश्न - भक्ति करने से ज्ञान का आस्वाद मिल जाता है, यह बात तो समझ में आयी लेकिन योग का आस्वाद कैसे मिलता है, कृपया बताऐंगे ?

उत्तर - अगर आप योग के मर्म को अच्छी तरह से जानते हैं तो यह बात ठीक तरह से समझ सकेंगे । योग क्या है, योग का रहस्य क्या है और योग क्यों किया जाता है इन प्रश्नों का विचार करेंगे तो आपको इसका उत्तर मिल जाएगा । योग के द्वारा मुख्यतया मन की शुद्धि, मन की स्थिरता एवं शांति द्वारा स्वरुप के साक्षात्कार का प्रयत्न किया जाता है और इसीलिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम और ध्यान जैसे साधनों का आधार लिया जाता है । भक्ति की साधना से मन की शुद्धि तो होती ही है परंतु दीर्घ समय के पश्चात् मन की स्थिरता भी सहज संभवित होती है और अंततोगत्वा भक्त के हृदय में ईश्वरप्रेम का उद्रेक होने पर भक्त ईश्वर के स्मरण मनन में इतना निमग्न होता जाता है कि ईश्वर के ध्यान की तन्मयावस्था उसके लिए नितांत स्वाभाविक हो जाती है । उसे भाव-समाधि का अनुभव होता है और उसका मन शांत हो जाता है और आखिरकार वह ईश्वर साक्षात्कार कर लेता है । इस तरह भक्तिमार्ग के साधक को योग की साधना का आस्वाद स्वतः उपलब्ध होता है । हाँ, भक्त को अपनी पसंदीदा भक्ति साधना का त्याग कतई नहीं करना है । इस प्रकार की साधना से वह ज्ञान एवं योग दोनों का फल प्राप्त कर लेगा और अपने जीवन को भी सार्थक बना लेगा ।

* * *

४७. तीर्थयात्रा

प्रश्न - कितने ही लोग तीर्थयात्रा करते हैं लेकिन वापिस आने पर उनमें अनीति, छल-कपट, बेईमानी आदि वैसे के वैसे ही रहते हैं, इसका क्या कारण है ?

उत्तर - इसका कोई एक कारण नहीं है । कारणों की चर्चा में उलझने की अपेक्षा तीर्थयात्रा के लाभ या उद्देश के बारे में सोचना अधिक उचित होगा । यात्रा करने का उद्देश्य निजी सुधार का होना चाहिए । लोग उद्देश्य के बारे में सोचते नहीं है इसलिए यात्रा करने के बाद घर आते हैं फिर भी वैसे के वैसे रह जाते हैं । मन के सुधार पर मनुष्य को विशेष ध्यान देना चाहिए । अगर ऐसा किया जाय तो उसका मन विशुद्ध और विशुद्ध होता जाएगा और वह तीर्थ समान बन जाएगा क्योंकि विशुद्ध मन एक महान तीर्थ है । इस चीज़ पर गौर करना चाहिए तभी तीर्थयात्रा का परिणाम हासिल हो सकता है अन्यथा सारी दुनिया के तीर्थों में घूमें तो भी क्या फायदा ? देखिये न, कौआ कितना भी उँचा उड़ता हो पर जब वह नीचे ज़मीन पर आता है तो उसकी नज़र विष्टा पर ही टिकती है । अगर वह काशी जैसे धर्मस्थान पर जाए तो भी वह काला ही रहेगा, श्वेत नहीं होगा । इसी तरह जब तक मन का मैल न मिटे, अंतर की कालिमा नष्ट होकर निर्मल न बनें और वासना का त्याग न करे वहाँ तक कुछ संभव नहीं है । अगर ऐसी स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान रखा जाए तो आपकी शिकायत, शिकायत नहीं रहेगी ।

प्रश्न - क्या हम हिमालय में बस सकते हैं ? कई बार यह विचार आता है कि सब छोडछाडकर हिमालय चलें जाय ।

उत्तर - हिमालय में बसना चाहते हैं तो बस सकते हैं किंतु वहाँ खान-पान की, हवामान की आदि अनेक मुश्किलें हैं । मनुष्य के मनोबल पर इसका आधार है । मनोबल दृढ होने पर वहाँ निवास किया जा सकता है । हिमालय पहुँचने से पूर्व हमें योग्यता हासिल करनी चाहिए । पूर्ण त्याग और एकांतसेवन कोई खेल नहीं है । इससे पूर्व अनेकानेक नियमों का पालन करना पडता है । सत्वगुणी बनना पडता है । मनोबल को मजबूत बनाना पडता है और अंततोगत्वा ईश्वरदर्शन या आत्मसाक्षात्कार के लिए तीव्र भूख जगानी पडती है । हिमालय जैसे पवित्र-एकांत स्थानों में मनुष्य को तंग आकर या दुःख से हताश होकर नहीं जाना है । इस तरह जाने से तो फिर वहाँ से लौट आना पडेगा इसमें कोई सन्देह नहीं । वहाँ प्रवेश तो तभी लेना है जब पर्याप्त साधना कर ली जाय और हृदय एकांत-वास के लिए खूब छटपटाये । ऐसा महत्वपूर्ण कदम उठाने से पहले हजार बार सोचना चाहिए और अपने दिल से निम्नलिखित सवाल पूछ लेने चाहिए -

१. आपका स्वभाव सत्वगुणी बना है ?
२. इसके लिए आप पुरुषार्थ करते हैं ?
३. सत्य, न्याय और प्रेम का जीवन में आचरण किया है ?
४. संसार की असारता को भलीभाँति समझ चुके हैं ?
५. इसके फलस्वरूप केवल प्रभु-प्राप्ति या अमर जीवन जीने की इच्छा हुई है ?
६. इसके लिए योग, भक्ति या ज्ञान की कोई मनपसंद साधना की है ?
७. एकांत या मौन का अनुभव किया है ?

८. ठंडी, गरमी, मानापमान सह सकते हैं ?

९. केवल ईश्वरपरायण होकर साधना कर सकेंगे ?

१०. त्याग न करने से क्या नहीं चल सकता और वह क्यों ?

११. स्त्री, धन, कीर्ति या शरीर संवर्धन की वासना दूर की है ?

१२. आपके आदर्श के लिए यदि जीवन की अंतिम क्षण तक एकांत-सेवन करना पड़े तो क्या आप तैयार हैं ?

इन प्रश्नों को अच्छी तरह सोच लेने के पश्चात् उनका उत्तर हाँ में आता हैं तो भी त्याग करने से पूर्व किसी महापुरुष या ज्ञानी की सलाह लीजिए अथवा आपके अंतरात्मा को बार-बार पूछिए । याद रखें कि त्याग कोई साहस नहीं है, और ना ही वह आंख मुँद कर मारी जानेवाली हनुमानकूद है । वह तो निश्चित विकास के बाद की स्वाभाविक अवस्थाविशेष है ।

* * *

४८. ज्ञान और भक्ति

प्रश्न - केवल ज्ञान से शांति मिल सकती है क्या ? *'मैं ब्रह्म हूँ'* ऐसा मानने से ही मुक्ति नहीं मिल जाती क्या ?

उत्तर - ज्ञान केवल पढ़ने से मिला हो मगर आचार में अनुवादित न हुआ हो तो इससे शांति नहीं मिल सकती । अगर आप मान लें की आप ब्रह्म है फिर भी आपके अंदर काम-क्रोध, अहंता-ममता और विषयों की आसक्ति का नाश नहीं हुआ तो आपको मुक्ति कहाँ से मिलेगी ? आपको दुर्गुणों से उपर उठना है, विषय और वासना के बंधनों से मुक्त होना है, तभी आपको मुक्ति का अनुभव होगा और आप ईश्वर तुल्य बन सकेंगे । केवल अपने आपको ईश्वर मानने से ईश्वर तुल्य नहीं बना जाता । इसके लिए आपको ईश्वरत्व यानि ईश्वर जैसे गुणों से संपन्न होना पड़ेगा ।

पाकशाश्त्र की कई किताबें बाज़ार में उपलब्ध है, जिसमें स्वादिष्ट व्यंजन बनाने की विधि का वर्णन होता है । मगर सिर्फ उसे पढ़ने से क्या भूख का शमन होता है ? तृप्ति मिलती है ? ड़कार आते हैं ? नहीं न । इसके लिए तो आपको रसोईघर में जाकर खाना बनाना पड़ेगा और उसे खाना पड़ेगा । अगर कोई व्याधि हुई हैं तो चरक, सुश्रुत या नागार्जुन जैसे औषधाचार्यों के ग्रंथ पढ़ने से दर्द थोड़ा चला जायेगा ? इसके लिए तो आपको ग्रंथो में जैसे बताया गया है, औषधियाँ लेकर उपचार करना पड़ेगा । ज्ञान का भी बिल्कुल वैसा है । सदगुरु द्वारा जो ज्ञान आपको दिया जाता है, या किसी ग्रंथविशेष से आपको जो ज्ञान मिलता है, उसे प्राप्त करने के पश्चात आपको उसे आचरण में अनुवादित करना होगा । ब्रह्म-तत्व का अनुभव करने के लिए आपको ध्यान, धारणा या भक्ति का आधार लेना होगा । इसके अलावा आपको शांति और मुक्ति नहीं मिलेगी ।

बहोत सारा अध्ययन करके भी क्या फायदा ? जितना जानते हो उसे आचरण में उतारने का प्रयास करो । अपनी गलतीओं को ढूँढो और सुधारो । जप और ध्यान में लगे रहो । तभी आप ईश्वर के करीब पहूँच सकोगे । याद रखो की ज्ञान का अभिमान साधनापथ पर सबसे बड़ा विघ्न है । सबकुछ छोडना आसान है मगर इसे छोडना अत्यंत कठिन है । अहं साधक को बहुत परेशान करता है । आप जप करने बैठेंगे तो आपका अहं कहेगा कि मैं तो ब्रह्म हूँ, मुझे जप करने की क्या आवश्यकता ? ध्यान करने बैठेंगे तो कहेगा, मैं स्वयं परमात्म-स्वरूप हूँ फिर मुझे किसीका ध्यान करूने की क्या आवश्यकता ? अहं के कारण आप ध्यान, जप, तप, कीर्तन ठीक तरह से नहीं कर पायेंगे । आपकी वासना और विषयासक्ति बरकरार रहेगी । क्या ब्रह्म आपकी तरह निर्बल, अल्प, कामी, क्रोधी या अभिमानी है ? ज्ञान के ऐसे मिथ्याभिमान से आपको बचना होगा । वरना ज्ञान आपको पार लगाने के बजाय डूबो देगा, मुक्त करने के बजाय बंधन में डाल देगा । आप जो भी कर्म करते हैं, इसका फल आपको अवश्य मिलता है । इसलिए केवल विचार का आधार लेकर बैठे ना रहें, उसे आचार में अनुवादित करें और अनुभवसिद्ध ज्ञानी बनें ।

प्रश्न - ज्ञानी या भक्त के एक-दो महत्वपूर्ण लक्षण बताएंगे आप ?

उत्तर - मेरे मतानुसार ज्ञानी या भक्त का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है **चित्त की स्थिरता** । अनेक प्रक्रियाएँ करने के बाद स्थिरता पैदा होती है । जब काम, क्रोध, अभिमान दूर हो जाते हैं और प्रेम, दया,

तथा नम्रता का प्रादुर्भाव होता है तब ऐसी स्थिरता प्राप्त होती है । ऐसा स्थिर चित्तवाला साधक सुख-दुःख, निंदा-स्तुति और भले-बुरे प्रसंगों में शांत रह सकता है । गीता में जिन्हें दैवी संपत्ति के नाम से अभिहित किया गया है उसकी प्राप्ति के बिना यह स्थिरता नहीं आ सकती । मन की स्थिरता के अभाव में ध्यान, निदिध्यासन, उपासना या अखंड जप - इनमें से कुछ भी नहीं किया जा सकता । जैसे पवन रहित स्थान में दीपक नहीं हिलता ठीक ऐसी अवस्था स्थिरताप्राप्त पुरूष के मन की होती है ।

इसके पश्चात दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण है **समता** । भक्त या ज्ञानी सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करता है । केवल मनुष्यों में ही नहीं, जड, चेतन सभी पशु-पक्षियों में ईश्वर को ही देखता है । विभिन्न नाम व रूप के भीतर अंतरात्मा के रूप में जो परमात्मा विराजित है उनका दर्शन वह करता है । इसलिए उन में रागद्वेष या भेद-भाव पैदा नहीं होते । भेदभाव होने से ही किसी के प्रति राग तो किसी के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है । जहाँ एक ही ईश्वर विविध भेष में सुशोभित हो रहा है वहाँ फिर किसके प्रति राग और किसके प्रति द्वेष उत्पन्न होगा ? किसीसे मोहित होने का प्रश्न ही कहाँ पैदा होता है ? स्त्री के हाड-चाम में वह आसक्त नहीं होता अपितु उसमें निहित शक्तिरूपी परमात्मा को निरखकर वह उससे अभेद सिद्ध करता है । ज्ञानी या भक्त, ब्राह्मण, हाथी, गाय, कुत्ते या चांडाल - सब में ईश्वरी आलोक को देखता है ।

तीसरा लक्षण है **मुक्ति** । ईश्वर-दर्शन करने के कारण भक्त हमेशा के लिए गुण या कर्म के विकार एवं बंधन से मुक्त हो जाता है । यह सब कुछ परमात्मा का ही है, सब कुछ परमात्मा ही है । इस भाव में स्थिति होने से उसकी अहंता और ममता मिट जाती है । ज्ञानी भी आत्मासाक्षात्कार करके सर्वत्र आत्मा का दर्शन करता है । वह भी अहंता-ममता से और प्रकृति के गुणधर्मों से मुक्त होता है । इस मुक्ति से ही परमानंद, सनातन शांति या धन्यता की अनुभूति होती है । इसे ही परमपद कहते हैं ।

* * *

४९. त्याग के बारे में

प्रश्न - इस संसार में प्राप्य वस्तु क्या है ?

उत्तर - केवल ईश्वर ही प्राप्त करने योग्य है । स्वरूप ही दर्शनीय है । जीवन का परम एवं आवश्यक ध्येय वही है ।

प्रश्न - वह कैसे मिल सकता है ?

उत्तर - दृढ निश्चय करके उसके लिए आवश्यक पुरुषार्थ करने से ।

प्रश्न - किंतु खाने पीने की और दूसरी आवश्यकताओं का क्या ?

उत्तर - ईश्वर की शरण में जाने से आपको कोई चिंता नहीं करनी पडेगी । आप केवल ईश्वर की चिंता करें, ईश्वर के लिये तडपें, देखिये फिर वे कैसे आपकी सभी चिंता अपने उपर ले लेते हैं । बालक जैसे माँ माँ करता है, उसी तरह आप भी ईश्वर को जगज्जननी मानें, उनका आश्रय ग्रहण करें, उनको पुकारें । वे आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे ।

प्रश्न - त्याग करना अच्छा है या बुरा ?

उत्तर - त्याग का अर्थ यदि काम, क्रोध आदि बुरी वस्तुओं का त्याग हो, मन की चंचलता, अहंता ममता या अशांति का त्याग हो तो ऐसा त्याग करने का काम बहुत अच्छा है, उपयोगी है । किंतु त्याग का अर्थ बाह्य त्याग हो तो वह अच्छा होगा या बुरा यह नहीं कहा जा सकता । उसका आधार त्यागी की योग्यता पर है ।

त्याग की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है वैराग्य । वैराग्य के बिना त्याग नहीं हो सकता और अगर होता है तो टिकता नहीं है । विवेक के द्वारा मनुष्य जानता है कि इस असार संसार में ईश्वर के सिवा सबकुछ नश्वर है । केवल ईश्वर ही प्राप्तव्य है । उसे प्राप्त करने से ही जीवन में सुख व शांति मिल सकती है । ईश्वर में ही प्रीति हो और दुन्यवी पदार्थो में से आसक्ति दूर हो जाये इसका नाम ही वैराग्य । इन्द्रियों के विषयों में एवं सांसारिक पदार्थों में जहाँ तक आपको ममता या दिलचस्पी है, वहाँ तक आप वैराग्य से कोसों दूर हैं यह निश्चित है । वैराग्य होगा तभी ईश्वर प्राप्ति की आपको लगन लगेगी, एकांत में ईश्वर की आराधना करने की इच्छा होगी और सांसारिक पदार्थ प्यारे नहीं लगेंगे । ज्ञानी की भी यही अवस्था है । इसकी प्राप्ति होने पर त्याग भी हो जाएगा । ऐसा क्रमिक त्याग उत्तम है, इससे लाभ होगा । किंतु जो त्याग वैराग्य के बिना किसीकी देखादेखी से या किसी अन्य कारण से किया जाय, वह उत्तम त्याग नहीं है, उसकी प्रसंशा नहीं की जा सकती । इस बारे में मुझे एक प्रसंग याद आता है ।

देवप्रयाग में मेरे पास एक संन्यासी आये और बोले, 'आपके पास रहकर आपकी सेवा करना चाहता हूँ ।'

मैंने उत्तर दिया, 'आप यहाँ नहीं रह सकते और मेरा माने तो आप घर जाइए और अपना व्यवसाय करके मौज-मजा उजाइए । आप संन्यास को जारी नहीं रख सकेंगे ।'

मेरी बात सुनकर उन्हें बुरा लगा और दूसरे ही दिन वे बिना मुझसे कुछ कहे कहीं चले गये ।

इसके अनन्तर जब एक बार मैं संगम पर घूमने गया उस वक्त एक युवानने मेरे पैर छूकर मुझसे प्रणाम किये । कोट पतलून में सज्ज उस युवान को मैं पहचान गया । यह वही संन्यासी था जो मुझे पहले मिला था ।

मैंने कहा, 'क्यों ? अब तो मजे में हैं न आप ?'

उसने उत्तर दिया, 'हाँ, अब तो अच्छा लगता है । घर पर ही रहता हूँ और मौज उडाता हूँ । यात्रियों को लेकर अभी बदरीनाथ जा रहा हूँ । फिर आपके दर्शन करने आश्रम पर आउँगा ।'

मैंने कहा, 'मैं अब बहुत प्रसन्न हूँ । जिसे इच्छा हो आये उसे फौरन त्याग करके भगवा वस्त्र धारण करने की जरूरत नहीं । बहुत कुछ सोचने के बाद और अनुभव के पश्चात् ही त्याग करना चाहिए । त्याग किया इसलिए इतिश्री हो गई ऐसा मत समझें । त्यागी के रूप में विशुद्ध जीवन गुजारा जाये इसके लिये जागृत रहना है । इसके अतिरिक्त जिस हेतु से त्याग किया हो उसकी प्राप्ति के लिए रातदिन दिल लगाकर पुरुषार्थ करना है । जीवन का आदर्श त्याग नहीं किंतु ईश्वर-प्राप्ति है । इसे अच्छी तरह ध्यान में रखकर त्याग का उपयोग दूसरी चीज में नहीं किंतु ईश्वर-प्राप्ति में ही हो यह देखना होगा । जहाँ तक ऐसा मनोबल हासिल न हो वहाँ तक बाह्य त्याग करने के बजाय संसार में रहकर अंतरंग त्याग करने की ओर ध्यान देना चाहिए ।'

इसके बाद वह युवक चला गया । कहने का तात्पर्य यह है कि बिना समझे जो त्याग किया जाता है वह टिकता नहीं । त्याग सदैव समझदारी से हो यही अच्छा है ।

* * *

५०. साधना का मार्ग

प्रश्न - साधना के मार्ग में हमें कौन सी बातों का विशेषकर ध्यान देना चाहिए ?

उत्तर - पांच बातों का विशेषकर ध्यान रखना चाहिए ।

१. दूसरों के दोष कभी न देखें और बिना देखें न रहा जाय तो दूसरों के दोष यत्र तत्र जाहिर न करें । अगर कहना ही हो तो जिस व्यक्ति में दोष दिखाई देते हो उसको ही उसके बारे में कहें । इससे अगर आपकी गलती होती होगी तो इसका स्पष्टीकरण होगा । अन्य का दोष यत्र तत्र जाहिर करने से कोई हेतु सिद्ध नहीं होता । इससे बहुधा पर्दाफाश करनेवाला व्यक्ति दूसरों की नफरत करनेवाला बन जाता है ।

२. दोष देखने ही हैं तो सिर्फ अपने दोष देखें । अपने दोषों को बारीकी से ढूँढ निकालने एवं उनको दूर करने की आवश्यकता साधनापथ में सबसे ज्यादा है । निर्बलता एवं मलिनता को नष्ट किये बिना साधना में विजय नहीं मिलती । शास्त्र एवं महापुरुष इसे ही हृदयशुद्धि कहते हैं । इसके लिए आत्मनिरीक्षण करते रहना चाहिए । ईश्वर के पथ के प्रवासी को चाहिए कि वह अपने विवेक और सच्ची दृष्टि के दर्पण में अपने छोटे से छोटे दाग की तलाश करके भीतर से और बाहर से स्वच्छ रहें । निर्मलता के अभाव में सत्यज्ञान का उदय नहीं हो सकता । शांति की प्राप्ति संभवित नहीं हो सकती । ईश्वर तो कोसों दूर रहता है यह कहने की शायद ही जरूरत होगी ।

३. जो भी काम करें वह शांति से करने की आदत डालें । खाने पीने में, बोलने-चालने में, सोचने-समझने में, साधना करने में निरर्थक जल्दबाजी करना उपयुक्त नहीं । जीवन की बाह्य एवं आभ्यंतर दोनों क्रियाओं में शांति हाँसिल होनी चाहिए ।

४. आपने सबकुछ पा लिया है ऐसा गलत आत्मविश्वास ख्वाब में भी नहीं रखना । जड़-चेतन सबमें से सच्चा शिक्षण प्राप्त करें । अपने आपको पंडित, ज्ञानी, उपासक, या कृतकृत्य मानने की वृत्ति मनुष्य का सत्यानाश करती है । वैसा मनुष्य किसीसे कुछ ग्रहण नहीं करता । वह दूसरों की त्रुटियों को देखता फिरता है । दूसरों से घृणा करता है और सन्मान करने योग्य व्यक्तिओं का योग्य आदर नहीं करता । भागवत में दत्तात्रेय के चौबीस अवतारों की कथा आती है । उन्होंने पृथ्वी, चील, अजगर, एवं वेश्या से सबक सीखा था । इसका तात्पर्य यही है कि मनुष्य को जागृत रहकर संसार में सबसे कुछ न कुछ सीखना है और ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो कोई-न-कोई शिक्षा न प्रदान करता हो । हमारे भारतवर्ष के प्राचीन ऋषिवरोंने एवं संतमहात्माओंने नदी, झरनें, पहाड, फूल, पत्थर आदिसे सबक सीखा था और सब में ईश्वर की ज्योति देखी थी । जहाँ सर्वत्र ईश्वर का आलोक दृष्टिगत होता हो और उसके बिना कुछ दिखाई ही न देता हो वहाँ कौन किसका विरोध करे ? किससे घृणा करे, किसको अधिक या कम प्रिय मानें और किसके साथ लडें ? भारतीय संस्कृति की यह गौरवान्वित उत्कृष्ट विचारधारा, उपनिषद्, रामायण, महाभारत एवं गीता में दर्शनीय है । आजपर्यंत के संतपुरुषों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में यह विचारधारा मूर्त रूप में दिखाई देती है । इस धन्य दशा में पहुँचने में ही जीवन का सार्थक्य है; जीवन का उत्तमोत्तम पुरुषार्थ यही है । किंतु इसके लिए हृदय के किवाड खुले रखकर और भीतर की गंदी हवा को बाहर निकालकर, बाहर की जानदार ताजी हवा को अंदर लेने की जरूरत है । मतलब यह की भगवान दत्तात्रेय की भाँती गुणग्राही बनने की आवश्यकता है । तभी सदगुणों की मूर्ति बन सकेंगे । इसके बिना

ईश्वर-प्राप्ति की साधना संभवित नहीं है । मनुष्य को प्राथमिक सिद्धि हासिल होने पर रुक नहीं जाना है बल्कि परमात्म-दर्शन या पूर्णता तक जाग्रत रहकर विकास करना है । अतएव किसी मामूली सिद्धि से अपने आपको धन्य या पूर्ण मानकर बैठे रहने से क्या होगा ?

५. अंतिम ध्यातव्य बात है जीवन या साधना का आदर्श । साधना द्वारा आप क्या प्राप्त करना चाहते है - इस बात को भूलना नहीं है । इसे अच्छी तरह याद रखने से आप जीवन का परिपूर्ण आध्यात्मिक विकास कर सकेंगे । इसका जितना भी मनन हो वह कम है । मनन करके उसके अनुसार जीवन को ढ़ालना है । इसके बिना जीवन का सच्चा आनंद नहीं मिल सकता ।

* * *

५१. काम, क्रोध और वासना का त्याग

प्रश्न - सुख और दुःख किस उद्यान में होते हैं ?

उत्तर - सुख और दुःख एक ही डाली पर होनेवाले दो फूल हैं जो मनरूप चमन में होते हैं । मन में होनेवाले संकल्प-विकल्प उसके बीज हैं । इस मन के उद्यान के बिना दुनिया के किसी उद्यान में - युरोप, अमरिका या कहीं भी सुख और दुःख के फूल नहीं मिलेंगे । अतएव महापुरुष कहते हैं कि संकल्प रूपी बीज को नष्ट कर दो या उसको शुद्ध करो तभी शांति या समता रूपी फूल मिल सकेगा ।

प्रश्न - यदि संकल्प विकल्प को जला दिया जाएगा तो शेष कुछ भी न रहेगा ?

उत्तर - कुछ भी न रहेगा यह मानना गलत है । सबकुछ नष्ट हो जाने के बाद जो बचता है वह सत्य है । उसीको प्राप्त करके मनको उसीमें तन्मय कर देने की आवश्यकता है ।

प्रश्न - जगत में अज्ञान अत्यधिक है - इसके लिए क्या किया जाए ?

उत्तर - अज्ञान को दूर करने के लिए अपने आपको विशुद्ध निर्मल बनाइए । अपने हृदय में ज्ञान की ज्योत जलाइए । आप स्वयं मुक्त एवं पूर्ण बनें । इतना करने पर आप वैयक्तिक रूपमें दुनिया की बहुत बड़ी सेवा कर सकेंगे । तत् पश्चात् परमात्मा स्वयं आपका पथ-प्रदर्शन करेंगे । अगर पूर्ण विकास प्राप्त करने में असमर्थ हो तो यथाशक्ति दूसरे की निःस्वार्थ सेवा करें और पूर्णता के ध्येय को न छोडें । यदि आप परमज्ञान प्राप्त न करे तो दूसरों को क्या दे सकेंगे ?

प्रश्न - काम और क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिए क्या किया जाये ?

उत्तर - सोचना चाहिए कि काम और क्रोध क्यों उत्पन्न होता हैं और वह किस पर होता है । ज्ञानी कहते हैं कि बिना ईश्वर के इस संसार में कुछ भी नहीं हैं । इस तरह सोचने से समझ में आयेगा कि काम क्रोध किस पर करना है । इस विचार पैदा होने से ही भेदभाव टलते हैं तथा काम एवं क्रोध का मूल कारण अज्ञान भी दूर होता है ।

जनसाधारण के लिए इसका आसान इलाज प्रभु के चरणों में प्रीति करना है । इससे हृदय स्नेहिल एवं पवित्र होगा तथा काम क्रोध स्वतः भाग जाएँगे । एकांत में बैठकर मनुष्य को अपनी दुर्बलता के लिए व्याकुल हृदय से रोना चाहिए, ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए । ऐसा करने पर ईश्वर उसकी कमजोरी को दूर करके उन्हें काम क्रोध जैसे दुर्गुणों से मुक्त करता है । प्रभु के चरणों में प्रीति होने से विषयों की आसक्ति स्वतः हठ जाती है उसमें कोई सन्देह नहीं । इसलिए सबसे उत्तम है - प्रभु के लिए प्रेम जगाने की कोशिश करें । ईश्वर-प्रेम जीवन की सभी समस्याओं का रामबाण इलाज है, इसमें कोई शक नहीं ।

प्रश्न - विषयों का भोग करते हुए क्या वासना का त्याग नहीं हो सकता ?

उत्तर - हो सकता है, किंतु यह काम दृढ मनोबलवाले पुरुषों का है । सामान्यतया मनुष्य भोगोपभोग में इतना आसक्त हो जाता है कि वह विवेकहीन हो जाता है, अपनी शक्ति नष्ट कर देता है और भोग की रसवृत्ति का त्याग करने में अशक्त हो जाता है । जनक की भाँति रहना आसान नहीं है ।

जनक तो पहले से ही ब्रह्मज्ञानी थे । उनका उदाहरण नहीं लिया जा सकता । वे तो अपवादरूप थे । वासना-त्याग का उत्तम और आसान उपाय है भोग से दूर रहना । मन को सत्संग में जोडिए । जो लोग भोग्य पदार्थों को न छोड सकें, उन्हें भी सत्संग करने की जरूरत है । इससे मन भोग्य पदार्थों से उपराम होकर प्रभुपरायण बनने लगेगा ।

* * *

५२. आत्मा का स्थान

प्रश्न - शरीर में आत्मा का स्थान कहाँ है ?

उत्तर - उपनिषद में कहा गया है कि *'अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥'* अर्थात् शरीर के मध्यभाग में पवित्र तथा प्रकाशमय आत्मा का अस्तित्व है और जिनके दोष मिट गये हैं अर्थात् जो निर्दोष हैं ऐसे तपस्वी पुरुष उसका दर्शन कर सकते हैं ।

उपनिषद में अन्य जगह आत्मा का उल्लेख करते हुए *'मध्य आत्मनि तिष्ठति'* कहा गया है । इसके द्वारा स्पष्टता की गई है कि आत्मा शरीर के मध्य में या हृदय में निवास करता है ।

गीता में कहा गया है *'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।'*

हे अर्जुन, ईश्वर सबके हृदयप्रदेश में निवास करते हैं ।

कोई पुरुष अपने बारे में कुछ कहना या परिचय देना चाहता है तब भी वह शरीर के किसी अन्य भाग पर हाथ रखने के बजाय स्वतः किसी प्राकृतिक वृत्ति से प्रेरित होकर अपनी छाती पर ही हाथ रखता है । इससे भी सूचित होता है कि आत्मा का स्थान वहीं पर है ।

श्री रमण महर्षि जैसे स्वानुभवसंपन्न महापुरुष का मंतव्य भी इस संदर्भ में जानने योग्य है । उन्होंने कहा है कि आत्मा का स्थान हृदयप्रदेश में और यह भी दाहिनी ओर स्थित हृदय में है । कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि आत्मा का स्थान मस्तिष्क में हैं । परन्तु इस मान्यता को सर्वथा समर्थन नहीं मिलता । दाहिनी ओर की बात छोड़ दी जाए तो भी आत्मा का प्रमुख स्थान हृदय है - इस बात या कथन के साथ प्रायः सभी लोग सम्मत है ।

प्रश्न - योगसाधना का आधार लेकर ईश्वर के साकार दर्शन करने की इच्छा पूरी हो सकती है ?

उत्तर - क्यों नहीं ? अवश्य हो सकती है किंतु शर्त यह है कि उसके लिए भक्त का हृदय चाहिए अथवा तो भक्तियोग का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । ईश्वर का साकार दर्शन जागृति एवं समाधि दोनों दशाओंमें हो सकता है । योग की साधना में प्रायः समाधि अवस्था में वैसा दर्शन संभवित है । हृदय जहाँ तक भावविभोर न हो जाय, प्रेम से परिप्लावित न हो जाय, ईश्वर के खातिर रोने-पुकारने और प्रार्थना करने न लग जाय, उसके लिए बेकरार होकर अनवरत रूप से विलाप करने न लग जाय, वहाँ तक ईश्वर दर्शन नामुमकिन है ।

प्रश्न - योग के स्वभावतः गंभीर साधक में भक्त का भावविभोर हृदय प्रकट हो सकता है क्या ?

उत्तर - अवश्य प्रकट हो सकता है और यदि प्रकट न होता हो तो सावधानी और समझदारी से काम लेकर धीरे धीरे क्रमानुसार प्रकटाना चाहिए । ईश्वर के साकार दर्शन की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए इतना अवश्य करना चाहिए । यह असंभव नहीं है । श्री रामकृष्ण परमहंस देव योगसाधना में गहरी दीलचस्पी लेते थे । फिर भी उनका भक्त हृदय मरा नहीं था । इस संबंध में स्वामी विवेकानंद एवं रामतीर्थ जैसे अन्य अनेक संतपुरुषों के उदाहरण दिये जा सकते हैं । यह मार्ग सबके लिए खुला है । भावमयता और गंभीरता ये दोनों परस्पर विरोधी हैं, ऐसा मानना उचित नहीं हैं । दोनों एक साथ रह सकते हैं और अपना अभीष्ट कार्य कर सकते हैं । * * *

५३. बाह्याचार और मृत्यु का शोक

प्रश्न - प्रेम को बाह्याचार की आवश्यकता है क्या ? मेरा प्रश्न भक्ति की दृष्टि से है ।

उत्तर - प्रेम को प्रकट करने के लिए प्रायः बाह्याचार की आवश्यकता होती है । भक्त या उपासक प्रभु के प्रति प्यार है, उसे प्रकाशित करने बाह्याचार का आधार लेता है जैसे कि पूजा-अर्चना, आरती, शृंगार, कीर्तन आदि । जहाँ प्यार है वहाँ बाह्याचार होना ही चाहिए यह नियम नहीं है । प्रेम की सफलता ईश्वर-दर्शन या ईश्वर-साक्षात्कार में है । अतएव प्रेमी या भक्तजन का ध्यान प्रेम द्वारा प्रभुदर्शन करने की ओर होना चाहिए ।

पूजा की बाह्य विधियाँ प्रभुप्रेम को घनीष्ट बनाने का साधन है यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिए । इसे भुलने में साधक का श्रेय नहीं है । जब वह ईश्वर के लिए परम प्रेम जगाकर प्रभु-प्राप्ति करने का ध्येय भूल जाता है तब वह मूर्ति को कैसा शृंगार करना, कैसे विविध भोग अर्पण करना और कैसी पूजा करना - ऐसे राजसी विचारों में डूब जाता है । पूजा की बाह्य विधि के द्वारा मनुष्य को प्रेम का उदय करना है । यह प्रेम जब जागृत होगा तब कैसी अवस्था होगी यह आप जानते हैं ? प्रभु को प्रत्यक्ष निरखने के बिना आप बेचैन हो जाएँगे और प्रभु को मिलने आपका प्राण तड़पेगा । आपका मन आतुर बनेगा । उनके विरह में आँखों से अश्रु बहेंगे । लहू में प्रभु-प्रभु की धडकन होगी और दिल की धडकनों के साथ ही प्रभु-प्राप्ति की लगन लगेगी । नैंनो में, वाणी में, बर्ताव में सर्वत्र प्रभु की आसक्ति का परिचय प्राप्त होगा और प्रभु की प्रीति प्रतिक्षण प्रभुदर्शन के लिए व्याकुल बना देगी । इस वक्त बाह्याचार एवं पूजा की बाह्यविधि शुष्क पत्ते की तरह झड जायेगी । फिर आप फूल कैसे तोडेंगे ? फूल तोडने जाएँगे वहाँ मालूम पडेगी कि प्रभु के विराट शरीर पर आभुषण बनके लगा हुआ ही है, फिर उसे क्यों तोडा जाए ? रात-दिन निरंतर आह और आँसु के फूल लेकर गोपी एवं मीरां की भाँति आप प्रभु की पूजा-अर्चना करेंगे । बिन प्रभु के तनहाइ का अनुभव करते हुए जीवन व्यतीत करेंगे । तत् पश्चात् आप ईश्वर-दर्शन से लाभान्वित होंगे । बाह्यविधि एवं बाह्याचार उसी उद्देश्य के लिए है, यह मत भूलना । नवधा भक्ति या बाह्य क्रियाएँ सिर्फ साधन हैं और प्रभु ही एक साध्य है इसे याद रखने में साधक का श्रेय समाया हुआ है ऐसा समझिये और उसे न भूलें ।

प्रश्न - मृत व्यक्ति के पीछे रोने-कुटने का रिवाज है, इसमें आप मानते हैं ?

उत्तर - बिलकुल नहीं । जिसे प्यार है वह तो अपने हृदय के भीतर रोएगा किन्तु सामुहिक रूप से रोना-धोना अच्छा नहीं है । इस प्रथा का अन्त करना चाहिए और इसके बजाय धीरज धारण करके मनमें या प्रकट रूप से प्रभु का नामस्मरण या संकीर्तन करना चाहिए ।

रोना-कुटना किसके लिए है ? मनुष्य जब अकेला रह जाए तो उसे अपने लिए ही रोना-कुटना है । ईश्वर की प्राप्ति के लिए ही अपना जीवन या जन्म है । उस ईश्वर से वह कोसों दूर रहा है । जगत में मृत्यु, बुढापा, रोग जैसे दिलको हिला देनेवाले नज़ारे देखता है फिर भी जीवन की निस्सारता समझकर धर्म, नीति या आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत्त नहीं होता बल्कि अधिक से अधिक कुटिल, अनीतिमान एवं जड हो जाता है । इन्द्रिय सुख को ही सबकुछ समझकर सुखसागर जैसे परमात्मा को प्राप्त करने के लिए आतुर नहीं बनता । खाना-पीना भागोपभोग करना और एक दिन संसार से सहसा बिदा हो जाना ।

बिना इसके उनके पास आत्मविकास का कोई आदर्श नहीं है । उनको अपने दोष मिटाने के लिए ईश्वर को प्रार्थना करना है । अगर रोना-धोना है तो अपने लिए ही, दूसरों को दिखाने के लिए नहीं । ऐसा करने से यम के दूत अपने फर्ज से विमुख नहीं होनेवाले । मृत व्यक्ति को दूसरा कोई फायदा नहीं है । रोने-कुटने से कतिपय महिलाओं को वक्षस्थल के रोग भी होते हैं । इस बुरी प्रथा को नष्ट कर देना चाहिए इसीमें समझदारी है । इसके बजाय मृत रिश्तेदार को दिलासा देने के लिए एकत्र होने की, समूह में हरिस्मरण करने की और गीता या सदग्रंथो का पठन-पाठन करने की प्रणाली शुरु करनी चाहिए । मृत्यु द्वारा सबक लेने की प्रथा प्रारंभ करनी चाहिए ।

* * *

५४. मुक्ति के बारे में

प्रश्न - कृपया मुक्ति के बारे में सिंहावलोकन प्रस्तुत करेंगे ?

उत्तर - मुक्ति का वास्तविक स्वरूप जानने के लिए उनको तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है । जिसे मुक्ति की कामना है वह बंधन में अवश्य ही होना चाहिए क्योंकि बंधन के अभाव में मुक्ति की जरूरत कैसे पड़ सकती है ? इसलिए सोचना चाहिए कि मनुष्य किससे बद्ध हुआ है ।

१. प्रथम बंधन तो दुर्वृत्तिओं का है जिसे गीता ने आसुरी संपत्ति की संज्ञा दी है । मनुष्य में काम व क्रोध है, वे उन्हें बाँधते हैं । मद, अभिमान, अज्ञान, कठोरता या निर्दयता, दंभ, स्वार्थ - ये सब बंधन मनुष्य को चंगुल में फंसाते है । इनसे मुक्त होकर नम्रता, प्रेम, मैत्री, दया, क्षमा, परोपकार, निःस्वार्थ, सत्य, अहिंसा आदि सद्गुणों से प्रतिष्ठित होना, यह प्रथम प्रकार की मुक्ति है । व्यवहार में रहकर इन वस्तुओं को सुचारु रूप से सिद्ध कर सकते हैं ।

२. दूसरा बंधन है अहंता और ममता, जिससे मनुष्य बंधा हुआ है । घर-गृहस्थी, स्त्री-पुत्र, धन-प्रतिष्ठा, संपत्ति आदि में ममता होने से मनुष्य उनके संयोग एवं वियोग से सुखी व दुःखी बनता है, हर्ष एवं शोक प्राप्त करता है । वह मानसिक स्थिरता नहीं पा सकता । मन का संतुलन प्राप्त करने के लिए हमें इस ममता से छुटकारा पाना है । इसका यह मतलब नहीं हैं कि हमें व्यवहार या पदार्थों का त्याग करना है । इन्हें छोड देना हमारी इच्छा की बात है किंतु उनके बीच रहकर हमें उनके आघात-प्रत्याघात से पर रहना सीखना है । जो कुछ भी है वह ईश्वर का है । यह विचार मन में यदि दृढ हो जाय तो ममत्व बुद्धि टल सकती है ।

इसके साथ ही हमे अहंकार के बंधन को तोड़ना है । अहंता अपने तक ही सीमित है जबकि ममता में बाह्य पदार्थो की भी आसक्ति है । मनुष्य शरीर में आसक्त होकर उसे ही अपनी आत्मा समझ लेता है इसलिये वह जड़ बनता है और शरीर के लिये ही जीता है और मरता है । सोचने से मनुष्य को ज्ञात होता है कि जो अहंता का वाचक है वह तो शरीर के भीतर ही है और वह जड न होकर चेतन है । अतः उसके लिए ही जीना और केवल उसे ही प्राप्त करना चाहिए । यही परम पुरुषार्थ है । इसके द्वारा ही परम शांति, परमानंद, निर्वाण मिल सकता है । इस चेतन आत्मा को ब्रह्म आदि संज्ञा से अभिहित किया गया है । जब यह निश्चित हो गया कि वह शरीर के अंदर है तब उसकी अनुभूति के लिये मनुष्य तड़पता है, तरसता है और सूक्ष्म मन से-सूक्ष्म मनोवृत्ति से उसका दर्शन करता है । यदि प्रेम-भाव से उसे प्राप्त करने की कामना है तो उसके लिए भक्ति मार्ग है जिसके द्वारा यही चेतन तत्त्व आपके आगे साकार रूप में उपस्थित होता है क्योंकि वे सर्वसमर्थ है । आत्म-साक्षात्कार के पश्चात् चराचर में सर्वत्र आत्मा की अनुभूति होती है, भेदभाव दूर होते हैं, भय मिट जाता है और परम शांति प्राप्त होती है । यही सच्ची शांति है । बिना इसके मनुष्य जिसे शांति मान लेता है, वह सच्ची शांति नहीं है । उदाहरणार्थ कोई निरक्षर मनुष्य यह कहे कि पढ़ने से क्या फायदा ? बिना पढ़े-लिखे ही हमारा जीवन सुचारु रुप से चलता है तो उसके कथन के बारे में क्या समझा जाय ? वह मूढ दशा की वाणी है इसलिये उस पर ध्यान देना उचित नहीं है । हम पढ़ने के फायदे अच्छी तरह से जानते है । इसी तरह जो केवल सदाचारी जीवन या सांसारिक सुखोपभोग से तृप्त है वह मूढ दशा में है । जीवन के यथार्थ विकास का या मानव शरीर के संभवित पुरुषार्थ का उसे खयाल नहीं है । इसलिए उसके कथन की ओर भी ध्यान देने की

जरूरत नहीं है । जो जीवनविकास की परिपूर्णता को भली भांति जानता है वह किसी प्राथमिक विकास के पश्चात् उसे इतिकर्तव्यता नहीं मान लेगा । यह तो मिथ्या संतोष है इसलिए वह तो जीवन के परिपूर्ण विकास को हासिल करके ही रहेगा ।

३. इन दो प्रकार की मुक्ति मिलने के बाद तीसरी मुक्ति मिल सकती है । क्योंकि तीसरी मुक्ति इन दोनों का परिपक्व फल है । हम देखते हैं कि मनुष्य ज्ञान, शक्ति और अवस्था से बंधा हुआ है । कल क्या होनेवाला है इसका उसे पता नहीं । उसकी शक्ति स्वल्प है । अभीष्ट कार्य करने में वह समर्थ नहीं है । व्याधि, वार्धक्य, मृत्यु आदि अवस्था के सामने वह विवश है । इस मजबुरी से मुक्त होकर मनुष्य परमात्मा की भांति सर्वसमर्थ, सनातन एवं सर्वव्यापक बन सकता है । वह त्रिकालज्ञ भी हो सकता है । यह मुक्ति अत्यंत उच्च कोटि की है और वह किसी विरले को ही मिल सकती है । अक्सर प्रथम दो प्रकार की मुक्ति से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । परमानंद के लिये प्रथम दो प्रकार की मुक्ति पर्याप्त है ।

इस प्रकार मानव पशुता को दूर करके सच्चा मानव बनता है, फिर देव तुल्य बनता है और अंततोगत्वा ईश्वर बन जाता है । मानव जीवन का इस तरह क्रमिक विकास होता रहता है यह विकास शरीर द्वारा ही और शरीर में रहकर ही करना है । देहत्याग करने के पश्चात् ही मुक्ति मिलेगी ऐसा नहीं है । मुक्ति का आनंद शरीर त्यागने से पूर्व ही प्राप्त करना है ।

* * *

५५. यज्ञोपवीत

प्रश्न - यज्ञोपवीत की महत्ता यदि इतनी अधिक है तो संन्यासी को यज्ञोपवीत का त्याग करना चाहिए ऐसा विधान क्यों किया गया है ? यज्ञोपवीत यदि उपयोगी ही है तो वह सन्यासी के लिये क्यों उपयोगी नहीं है ? उसे इससे क्यों वंचित रखा जाय ? तो क्या यज्ञोपवीत का त्याग करने का विधान गलती से किया गया है ?

उत्तर - यह विधान भूल से नहीं किया गया किंतु सहेतुक किया गया है । जब मनुष्य संन्यास ग्रहण करता है, तब वह अपने व्यवहारिक जीवन के सभी बंधनो को तोड देता है, उनसे सदैव के लिए संबंध विच्छेद करता है । वह अपना नाम व स्थान बदलता है, सारे परिवार का त्याग करता है और बाह्य भेष को भी बदल देता है । वह वर्ण से भी अतीत हो जाता है अर्थात् वर्ण के चिन्ह या बंधन से मुक्त हो जाता है । इसीलिए द्विज के विशेष चिन्हरूप शिखासूत्र का भी परित्याग उसके लिये आवश्यक माना गया है, और यह उचित ही है । यह उसके अभिनव जीवन में प्रवेश करने की निशानी है ।

प्रश्न - किंतु इसके कारण यज्ञोपवीत से जो लाभ होता है उससे तो वह वंचित रह जाता है न ?

उत्तर - नहीं रह जाता क्योंकि यज्ञोपवीत से जो लाभ होता है, इससे भी विशेष लाभ उसे संन्यासी जीवन द्वारा, अगर वह अच्छी तरह या समझदारी से जीता हो तो मिल सकता है । उसका गेरुआ वस्त्र ही इस बात का सूचक है कि उसने सर्व प्रकार की लौकिक वासना पर पानी फेरकर एकमात्र आत्मज्ञान अथवा परमात्मा की प्राप्ति के लिए ही संन्यास के इस अभिनव जीवन का अवलंबन लिया है । इसके लिए ही उसका व्रत है । अन्य सभी लौकिक ममत्व वृत्ति, आसक्ति एवं अहंता को उसने ज्ञान रूपी अग्नि में जलाकर भस्म कर दिया है । उसका समुचा जीवन ही परमात्मा की प्राप्ति के लिए है । इस तरह देखा जाय तो यज्ञोपवीत द्वारा जो परमात्म-प्राप्ति की दीक्षा उसे आजपर्यंत दी जाती थी वह दीक्षा संन्यास का स्वीकार करके वह सहज ही में प्राप्त कर लेता है । इसके अतिरिक्त उसे त्यागमय जीवन की दृष्टि मिलती है अतएव यज्ञोपवीत के त्याग से उसे तनीक भी नुकसान नहीं होता ।

प्रश्न - परंतु सभी संन्यासी त्याग के मर्म को समझकर वैसा जीवन कहाँ जीते हैं ?

उत्तर - सब नहीं जीते यह दूसरी बात है परंतु ऐसा जीवन जीना चाहिए यही उनसे अपेक्षित है । वैसा देखा जाय तो यज्ञोपवीत धारण करने या करानेवाला भी उसका मर्म समझकर या समझाकर उसका उचित उपयोग कहाँ करते हैं ? इसलिए इसकी उपेक्षा थोडे ही की जा सकती है ?

प्रश्न - क्या यज्ञोपवीत का रिवाज आजके जमाने में उचित है ?

उत्तर - जहाँ तक आप उसके स्थान पर उससे अधिक अच्छी संस्कार-क्रिया को न ला सके वहाँ तक यह उपयुक्त ही है अन्यथा प्रजा के पास धर्म संस्कार की प्रवृत्ति जैसा रह ही क्या जायेगा ?

* * *

५६. भक्ति के प्रति अभिगम

प्रश्न - ज्ञानी भक्ति में नहीं मानते बल्कि कभी कभी भक्ति से घृणा भी करते हैं । इस बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर - जो निर्गुण निराकार तत्व को मानते है उन्हें भक्ति की जरूरत नहीं है । आत्मज्ञान को दृढ बनाके ध्यान द्वारा ज्ञानी ईश्वर को प्राप्त करता है । ज्ञान-मार्ग का विस्तृत वर्णन गीता के छठे अध्याय में किया गया है, परंतु इसके लिए उसमें परमात्म दर्शन के लिए छटपटाहट, परम पुरुषार्थ एवं निश्चय की आवश्यकता है । रात और दिन उसे उस विराट तत्व का चिंतन, मनन एवं निदिध्यासन करना पड़ेगा । नारदजी ने जिस तरह परमात्मा में अनंत अनुराग को भक्ति कहा है, उसी तरह शंकराचार्य ने अपने परमात्म स्वरूप के अनुसंधान को - स्मरण, मनन एवं निदिध्यासन को भक्ति कहा है । अंतर मात्र स्वरूप का है । एक साकार का भक्त है तो दूसरा निराकर का लेकिन दरअसल वे दोनों परमात्मा के उपासक हैं । इसलिए सच्चा ज्ञानी भी भक्त होता है इस बात को समझना है । फिर वह भक्ति को क्यों नहीं मानेगा ?

दूसरे रूप से विचार करें कि ज्ञानी किसे कहते हैं । ज्ञानी के अनेक लक्षण होते हैं । वह समदर्शी होता है । वह सर्वत्र अपनी आत्मा या परमात्मा को देखता है अतएव वह किसी का भी तिरस्कार नहीं कर सकता । वह दुष्ट या मूर्ख मनुष्य की ओर भी नफरत की निगाह से नहीं देखता वरन् रहम की नजरों से देखता है । अब आप ही सोचे कि वह भगवान-प्राप्ति के महान साधन भक्ति की ओर घृणा कैसे रख सकता है ? वह जानता है कि अपनी अपनी रुचि के अनुसार मनुष्य भिन्न भिन्न रीतियों से प्रभुप्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं - सभी मार्ग ईश्वर के समीप ले जाते हैं तो फिर मुझे ऐसा दुराग्रह क्यों रखना चाहिए कि सब अपना मार्ग छोडकर मेरा मार्ग ही ग्रहण करें ? ऐसा दुराग्रह ज्ञान की नहीं, अज्ञान की उपज है । गीता ने उसे तामसिक ज्ञान कहा है । सच्चा ज्ञानी तो सबसे प्यार करता है । वह प्रेम-नफरत, पसंद-नापसंद आदि के बंधन से मुक्त होता है ।

ज्ञानी के विषय में कोई प्रमाणित निर्णय करना है तो हमें पुरोगामी महान ज्ञानी पुरुषों के जीवन का विचार करना पडेगा । शंकराचार्य एक महान भक्त थे और उन्होंने शंकर, शक्ति एवं कृष्ण की ज्ञानमिश्रित स्तुतियाँ लिखी हैं । ज्ञाननिष्ठ शुकदेवजी ने अपने स्वमुख से भागवत की कथा कही है और साकार भक्ति का प्रतिपादन किया है । व्यास एवं नारद को भक्ति के द्वारा ही शांति मिली है । तो फिर आजके तथाकथित ज्ञानियों का क्या हिसाब ? असल में बात यह है कि बिना ज्ञान के भक्ति नहीं क्योंकि संसार की असारता और ईश्वर की सत्यता के ज्ञान से ही भक्ति जगती है और भक्ति के बिना ज्ञान नहीं क्योंकि परमात्मा की निरंतर भक्ति से ही परमज्ञान प्राप्त होता है ।

प्रश्न - कुछ चिंतको का यह मानना है कि दर्शन की भाषा अत्यंत कठिन अर्थात् अर्थघन होनी चाहिए । इस बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर - दर्शन की भाषा अर्थघन होनी चाहिए यह मान्यता गलत है । दर्शन का विषय विद्वानों की बहस का विषय नहीं है । वह साक्षरों का इजारा-मोनोपोली नहीं है । दर्शन प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है । प्रत्येक मनुष्य को उसके गूढ़ रहस्य एवं सिद्धांत समझाने की जरूरत है ।

अतएव आप जिस भाषा के द्वारा धर्म या दर्शन समझाए वह भाषा अत्यंत सरल, स्पष्ट एवं सुमधुर होनी चाहिए । कथ्य को सरल सुबोध भाषा में अभिव्यक्त करना चाहिए । जानना कठिन है परंतु जो जानते हैं उसे समझाना या प्रकाशित करना इससे भी अधिक कठिन है । इन दोनों कलाओं में प्रवीण बनना चाहिए ।

मेरी बात में सन्देह करने का कोई कारण नहीं है । विश्व का महान धर्मग्रंथ भगवद् गीता इसका प्रमाण है । यह ग्रन्थ धर्म या दर्शन का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है फिर भी उसकी भाषा सरस, सरल एवं सुबोध है । बुद्ध के उपदेश भी अत्यंत सरल भाषा में है । शिक्षित और अशिक्षित, किसान, मजदूर आदि सब आसानी से समझ सके ऐसी सरल से सरल भाषा द्वारा दर्शन को व्यंजित करना चाहिए । तत्वज्ञान कोई इन्द्रजाल नहीं कि उसके इर्दगिर्द दुरुह, बोझिल और रहस्यमय शब्दों की जाल खडी करनी पड़े । वह तो ऐसे सिद्धांतो का संकलन है जिसे मानवमन अनायास समझ सके । इतना समझने पर दर्शन को हम आसान से आसान बना सकेंगे ।

* * *

५७. कलियुग के बारे में

प्रश्न - फिलहाल तो सर्वत्र कलियुग का विस्तार है - धर्म, नीति व सदाचार का आचरण करना अत्यंत कठिन है । यह सब युग का ही प्रभाव है न ?

उत्तर - युग का प्रभाव है यह मानना वैसे तो ठीक है पर आज तो मनुष्य असत्य के मार्ग पर कदम बढ़ाता है और कहता है इसमें हमारा क्या कसूर है ? यह सब तो कलियुग का ही प्रभाव है । इसलिए कलियुग की आड में दुष्कर्म करना कहाँ तक उचित है ? इस युग में भी मनुष्य ईश्वर-परायण बन सकता है । तप, व्रत आदि कर सकता है । नीति व सदाचार का पालन कर सकता है । यह बात हम आज भी संतपुरुषों एवं नीतिमान पुरुषों से जान सकते हैं । इसलिए प्रधान वस्तु मनुष्य का मन है । उसे सुधारना या बिगाड़ना, यह मनुष्य के हाथ की बात है । मन सुधरता है तो वह सतयुग है और बिगड़ता है तो वह कलियुग हो जाता है ।

प्रश्न - तो फिर मनुष्य ऐसे विरोधी वातावरण में कैसे रहें ?

उत्तर - वातावरण विरोधी हो या न हो, मनुष्य को अपना स्वार्थ साध लेना है - तात्पर्य यह कि उसे धर्म व नीति को जीवन में चरितार्थ करके ईश्वर-परायण बनना है । यह कोई कठिन काम नहीं है । मनुष्य मौत का मुकाबला करके शेर जैसे भयानक प्राणियों का शिकार करता है, राक्षस जैसा बनकर युद्ध में लडता है और संसार में रात-दिन दौड-धूप करता है । इसी तरह मनुष्य अपने मन को मारकर पुरुषार्थ करें तो वह नीति परायण होकर आत्मशांति प्राप्त कर सकता है ।

जब हनुमानजी लंका गये तब रावण के महल के नजदीक उन्होंने एक ऐसा महल देखा जिसमें से *राम राम* की ध्वनि आ रही थी । हनुमानजी को अचरज हुआ कि राक्षसों की इस नगरी में राम की ध्वनि कैसे ? महल के बाहर तुलसी क्यारी थी और उसके उपर *राम राम* लिखा हुआ था । ब्राह्मण का भेष लेकर वे उस महल में गये । तब जाकर हनुमानजी और विभीषण का मिलाप हुआ । हनुमान विभीषण को रामभक्त जानकर प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना परिचय दिया । फिर तो क्या कहना !

विभीषण अत्यंत प्रसन्न होकर बोल पडे, 'मुझ पर कृपा करके रामचंद्रजी ने मुझे अपने भक्त के दर्शन कराये ।'

हनुमानजी ने पूछा, 'यह तो राक्षसों की नगरी है, आप यहाँ कैसे रह सकते हैं ?'

विभीषणने जवाब दिया, 'बत्तीस दाँतों के बीच में जिस तरह जीभ रहती है, मैं इसी तरह यहाँ पर रहता हूँ ।'

विभीषण के इस उत्तर से हमें सीख लेनी होगी । विभीषण की तरह संसार के विषम वातावरण में हमें सच की राह पर चलकर विकास करना होगा । अगर हमारी निष्ठा सच्ची होगी तो ईश्वर हमारी जरूर सुनेगा और हमें आवश्यक मदद भी करेगा ।

प्रश्न - संत तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में कलियुग की विशेषता दिखाते हुए कहा है - "मानस पुण्य होहि नहि पापा" अर्थात् कलियुग में मनसे जो पुण्य होता है उसका फल मिलता है परन्तु मनसे होनेवाले पाप को नहीं गिना जाता । इसका अर्थ क्या है ?

उत्तर - अर्थ स्पष्ट ही है । तुलसीदासजी कहना चाहते हैं कि इस युग में मन से किया जानेवाला पुण्य कर्म फलता है अर्थात् मान लीजिए किसी दीनदुःखी को देखकर यदि आपके मन में दया, करुणा और सेवा की भावना पैदा हो फिर भी उस भावना को चरितार्थ करने की क्षमता या सामग्री आपके पास न हो तो उस भावना का शुभ फल आपको मिलेगा ही किंतु इससे विपरीत मन में अगर कोई पाप-विचार पैदा हो तो उसका बुरा फल आपको नहीं मिलेगा ।

प्रश्न - इसका मतलब क्या यह नहीं कि मनसे पाप करने की छूट है ?

उत्तर - इसका मतलब यह नहीं है । श्रेष्ठ चीज तो वही है कि तनसे तो बुरा कार्य कभी न हो किंतु मन में भी बुरा विचार या भाव न उठे । आचार व विचार दोनों में साम्य हों, दोनों मंगलकारी हों । यदि किसी कारण से आचार-विचार की शुद्धि संभवित न हो और उस परिस्थिति में मन में अशुभ विचार पैदा हो तो उसका आचरण न हो ऐसी शक्ति हासिल करनी है । इतना कार्य हो तो भी बेड़ा पार हो जाय । आज तो समान्यतया मनुष्य की दशा ही ऐसी है कि मन में उत्पन्न विचार कब चरितार्थ हो जाता है उसका पता भी उसे नहीं चलता फिर उस विचार का अनुसंधान करने का या उस पर संयम पाने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता ।

* * *

५८. सिद्धिओं का सदुपयोग

प्रश्न - सिद्धिओं का सदुपयोग, सही उपयोग संभव है क्या ?

उत्तर - विश्व की प्रत्येक वस्तु का सही एवं गलत, उचित या अनुचित रूप में प्रयोग या उपयोग हो सकता है । इसका आधार व्यक्ति की बुद्धि, वृत्ति, दृष्टिकोण या भावना पर निर्भर रहता है । उदाहरण के लिये जो लकडी किसी के चलने का आधार बन सकती है, वही लकडी का प्रयोग किसीको मारने में भी हो सकता है । इतना ही नहीं वही लकडी रक्षा हेतु भी उपयोग में ले जा सकती है ।

सिद्धिओं का भी यही प्रचलन है । यदि किसी मनुष्य को कम या ज्यादा प्रमाण में सिद्धि प्राप्त होती है तो उससे आसक्त होकर अभिमानी न होते हुए उन्हीं सिद्धियों का उपयोग लोककल्याण हेतु किया जाये तो वही श्रेष्ठ होगा, उपयुक्त होगा । सिद्धियों की श्रेष्ठता, शोभा एवम् सार्थकता तभी मानी जायेगी जब कोई सिद्धि प्राप्त व्यक्ति अपनी सिद्धियों का उपयोग मानव कल्याण हेतु एवम् स्वयं के आत्मोर्कष हेतु करें ।

प्रश्न - परंतु सत्य तो यह है कि सिद्धिप्राप्त पुरुषों में अन्यों की सेवा करने की, परहित की भावना नहीं होती है । दूसरों की सेवा करने की वृत्ति को वो मोह, माया और अज्ञान मानते हैं, उसका क्या उत्तर होगा ?

उत्तर - यदि ऐसा है तो वह बहुत बड़ी बदनसीबी होगी । मनुष्य की इसी वृत्ति के कारण आज तक समाज का बहुत अहित हुआ है, नुकसान हुआ है । सिद्धिओं का उपयोग करके दूसरों की सहायता करने की प्रवृत्ति को माया, मोह या अज्ञान समझना ही मेरे ख़याल में अज्ञान की निशानी है । इस अज्ञान से हमें मुक्त होना होगा । क्योंकि अज्ञान में फँसी हुई प्रजा कभी उचित विकास नहीं कर सकती, दुःखी रहती है, तथा सुख शांति और समृद्धि की हकदार नहीं होती । अध्यात्म, धर्म, साधना और योग के नाम पर हम प्रजा को स्वार्थी या एकाकी होना नहीं सिखाते । ऐसा सिखाने का सोच भी नहीं सकते । हम तो उन्हें उदार, निःस्वार्थ और सेवापरायण बनाना चाहते है और ऐसा ही संदेश देते है । हमारे प्रातःस्मरणीय सत्पुरुषों ने भी हमें यही सिखाया है । इसलिए सिद्धिप्राप्त संतपुरुष या साधक उसमें कोई अपवाद नहीं है । जो बात जनसाधारण के लिए कही गई है वही बात उनको लागु पड़ती है । इसमें अवकाश की कोई गुंजाइश नहीं है ।

प्रश्न - शांभवी मुद्रा की सहायता से सिद्धियाँ मिल सकती है क्या ? जैसे कि आसमान में उड़ने की, बड़ा या छोटा रूप धारण करने की, गायब हो जाने की, दूसरों के मन की बातें जान लेने की, भूत, भविष्य एवं वर्तमान के राज़ को खोलने की, अपने अभिष्ट पदार्थों की प्राप्ति करने की और ऐसी अनेक सिद्धियाँ ।

उत्तर - पहले ये बताओ कि ऐसी सिद्धियों की कामना क्यों करते हो ?

प्रश्न - लोगों को दंग करने के लिए या प्रभावित करने के लिए ।

उत्तर - आपकी यह कामना उचित नहीं है । किसी तरिके से आप सिद्धियाँ हासिल करेंगे तो भी आपको शांति नहीं मिलेगी । आपका उद्देश्य जरा भी प्रसंशनीय नहीं है । अगर आपको सही मायने में शांति चाहिए तो ईश्वर-दर्शन या आत्म-साक्षात्कार की महत्वपूर्ण सिद्धि प्राप्त करनी होगी । इसके लिए आत्मिक साधना का आश्रय लेना पडेगा । ये सिद्धियाँ आप या अन्य किसीकी शांति की प्यास नहीं बुझा सकेगी । उनके मोह में मूल मार्ग को भुल जाने का या लक्ष्य को गँवा देने का संभव ज्यादा है । इसलिए कहता हूँ कि मोह का त्याग करें । यह सहज रूप में प्राप्त हो जाए तो ठीक है, इनका सदुपयोग करें, इनकी लालसा मत रखिए ।

* * *

५९. आत्मविकास की साधना

प्रश्न - आत्मोत्कर्ष के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए क्या करना चाहिए ? जप का आधार लेना आवश्यक है या जप के बिना भी चल सकता है ? सद्ग्रंथो के अध्ययन बिना भी चल सकता है ?

उत्तर - सभी के लिए जप जैसी बाह्य प्रवृत्ति का आधार लेना आवश्यक है, ऐसा नहीं है । उसके बिना भी चल सकता है । सद्ग्रंथो के अध्ययन के बिना भी चल सकता है ।

प्रश्न - तो फिर आसन, प्राणायम, षट्क्रिया, मुद्रा एवं ध्यान के बगैर भी चल सकता है ? मुझे उसमें खास दिलचस्पी नहीं है ।

उत्तर - आपको रुचि नहीं है ये अलग बात है फिर भी उसके बगैर चल सकता है ।

प्रश्न - तो फिर किसके बिना नहीं चलेगा ?

उत्तर - सद्गुणों के बिना । भगवद् गीता के सोलहवें अध्याय में जिन्हें दैवी संपत्ति के सुंदर नाम से पहचाना गया है वह दैवी संपत्ति अर्थात् सदगुणों का विकास आत्मोन्नति की साधना में बहुत सहायक होता है । जीवन का विकास करने में यह अत्यंत आवश्यक है । उसके बिना आगे बढ़ना असंभव है । सदगुणों की वृद्धि का ध्यान रखने के साथ साथ जप, ध्यान तथा अन्य कठिन साधना का आधार यदि लिया जाय तो अधिक उचित होगा, उससे और अधिक श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त होगा ।

प्रश्न - सदगुणी वृत्ति नितांत आवश्यक है ? कुछ संतो का मानना है कि सदगुणी जीवन नहीं होगा तो भी चलेगा, क्या यह सही है ?

उत्तर - नहीं । यह कथन सही नहीं है । ऐसा कहना साधकों की कुसेवा करना और उसे गलत राहों पर ले जाना ही होगा । ऐसे कथनों को आदर्श मानकर चलने से साधकों को श्रेय प्राप्त नहीं हो सकता । जीवन की शुद्धता ही जीवन विकास की नींव है । उस नींव की, उस धरातल की अवहेलना करने पर जीवनविकास करनेवाले साधक को या साधारण मनुष्य को कोई लाभ नहीं होगा ।

प्रश्न - जीवन शुद्धि कितने समय में संभव है ?

उत्तर - जीवनशुद्धि या जीवन विकास के लिए निश्चित समयसीमा नहीं है । साधक के आत्मबल और उसके कठिन प्रयास पर ही जीवन शुद्धि का आधार रहता है । साधक का प्रयास यदि निरंतर एवंम् प्रबल हो तो बहुत ही कम समय में शुद्धि हो सकती है, सिद्धि प्राप्त हो सकती है । परन्तु साधक का प्रयत्न यदि निर्बल रहा, विलंबित रहा तो जीवनशुद्धि प्राप्त करने में भी समय लगेगा । जीवनशुद्धि की सफलता का आधार साधक के प्रयत्न पर आधारित है ।

प्रश्न - जीवन की शुद्धि के अलावा भी साधना की अंतिम सिद्धि प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर - ना ।

प्रश्न - तो पहले शुद्धि को प्राप्त करना, जब तक संपूर्ण शुद्धि प्राप्त न हो तब तक साधना सिद्धि की कामना करना भी क्या उचित होगा ?

उत्तर - नहीं, दोनों कार्य एक साथ होना चाहिए । अर्थात् साधक को अपने जीवन की शुद्धि के लिए स्वयं के दुर्गुणों को दूर करने का अथक एवम् व्यवस्थित प्रयत्न करते रहना चाहिए । साधना की सिद्धि का लक्ष्य सामने रखते हुए, सिद्धि तक पहुँचने के प्रामाणिक प्रयत्न भी करना चाहिए । उसके लिए अंतरंग साधनों का जो अभ्यासक्रम होता है, उससे नियमित रुप से अपने आप को जोड़ना चाहिए । गीता के द्वितीय अध्याय में भगवान श्रीकृष्णने इस बात का संकेत देते हुए कहा है कि साधक में यदि थोड़ी सी भी अशुद्धि, विषयों की अभिरुचि रह जाती है तब भी परब्रह्म परमात्मा के दर्शन से उसका अंत हो जाता है । अतः सिद्धि की साधना भिन्न और जीवनशुद्धि की साधना भिन्न ऐसे दो विभाग करने की आवश्यकता नहीं है । जीवन शुद्धि की साधना और जीवन सिद्धि की साधना दोनों परस्पर अंतरंग ही है । दोनों एक सिक्के के दो पहलू समान है ।

प्रश्न - आत्मोत्कर्ष की साधना में अन्य कौन सा महत्वपूर्ण अंग है ?

उत्तर - मन की चंचलता का अभाव ।

प्रश्न - वह कैसे संभव है ?

उत्तर - जैसे जैसे शुद्धि प्राप्त होती जाती है, वैसे मन की चंचलता उत्तरोत्तर कम हो जाती है । मन स्थिरता प्राप्त करने लगता है । इतना ही नहीं, प्रार्थना ध्यान एवम् जप जैसी क्रियाओं से मन की चंचलता क्षीण होती जाती है ।

प्रश्न - जीवनविकास या जीवनोत्कर्ष की साधना में अन्य कोई याद रखने जैसी वस्तु है क्या ?

उत्तर - अन्यों की सेवा की प्रवृत्ति ।

प्रश्न - अन्यों की सेवा करने की प्रवृत्ति को कुछ लोग बन्धनकारक मानते है ।

उत्तर - ऐसा मानना नितांत गलत साबित होगा । वास्तव में अन्यों की सेवा और परहित की भावना से ही मन धीरे धीरे विशुद्ध होता चला जाता है । मन स्थिर, विशाल एवं उदार बनता है । सृष्टि के कण कण में वह उदात्त मन ईश्वर का दर्शन कर पाता है । इसलिए हमारे महापुरुषों ने परहित कर्म को कर्मयोग कहा है । और यह भी कहा है कि कर्मयोग का आधार लेकर ही हम परहित को साध सकते है । साथ ही स्वयं का परमहित भी साधक साध सकता है ।

* * *

६०. नादानुसंधान के बारे में

प्रश्न - नादानुसंधान का क्या अर्थ है ?

उत्तर - नाद का अनुसंधान करना अथवा नाद के साथ संबंध जोड़ना ।

प्रश्न - वह अनुसंधान कृत्रिम होता है या सहज होता है ?

उत्तर - दोनों प्रकार का हो सकता है । साधना की आरंभिक स्थिति में साधक को स्वयं नाद को अंदर से, कृत्रिम रूप से उत्पन्न करके चित्त की वृत्ति के साथ जोड़ना पड़ता है, उसे स्थिर करना पड़ता है । परंतु साधना में प्रगति करने के बाद कोई भी बाह्य क्रिया की सहायता के बिना अंदर से ही नाद का श्रवण अपने आप होता रहे वही स्थिति श्रेष्ठ होती है ।

प्रश्न - नाद को जगाने के लिए क्या कोई बाह्य क्रिया होती है ?

उत्तर - उस क्रिया को षण्मुखी मुद्रा कहा जाता है । उस मुद्रा में दोनों हाथ की उँगलियों की सहायता से दोनों नाक कान के छिद्रों को एवम् मुख को बन्द कर दिया जाता है । ऐसा करने से साधक को अंदर से, अपनी आत्मा से, नाद सुनाई देता है ।

प्रश्न - पर वैसा करने पर यदि साँस लेने में घूटन महेसुस हो तो ?

उत्तर - ऐसा होने पर नाक नहीं बन्द करना चाहिए । नाक को बन्द किए बिना भी कान से नाद का श्रवण कर सकते हैं । बीच-बीच में हाथ दुःखने पर, थक जाने पर थोडा विश्राम कर लेना चाहिए और पुनः नादश्रवण का अभ्यास आरंभ करना चाहिए । ऐसा अभ्यास प्रतिदिन सुबह और शाम दस या पंद्रह मिनट तक कर सकते हैं । रात्रि में या प्रातःकाल में यह क्रिया करना अधिक अनुकूल और लाभकारक होगा ।

प्रश्न - उस क्रिया से क्या लाभ होगा ?

उत्तर - जिस प्रकार सूरमय संगीत का श्रवण करने से मन मुग्ध होकर आनंद का अहेसास पाते-पाते अपने आप एकाग्र हो जाता है वैसे ही अंदर से उत्पन्न नाद में मग्न मन बाह्य तर्कवितर्क या विषय विकारों को छोड़कर नाद समाधि में निमग्न हो जाता है । मन की चंचलता शांत हो जाती है । उससे अधिक क्या लाभ चाहिए ? धीरेधीरे अभ्यास में रत मन अंततः देहातीत दशा का अनुभव करने लगता है, इतना ही नहीं आत्मानुभव का आनंद भी लेता है । षण्मुखी मुद्रा साधक की सहचरी बनकर बहुत ही उपयोगी साबित होती है ।

प्रश्न - स्वतः अंदर से उत्पन्न नाद की अनुभूति कैसी होती है ?

उत्तर - वह नाद कान को बन्द किए बिना अंदर से अपने आप प्रकट होता है । आरंभ में वह नाद एक कान से सुनाई देता है फिर दुसरे कान से सुनाई देता है । कभी कभी वह नाद दोनों कानों से सुनाई देता है और जोर से सुनाई देता है । समय के साथ वह मन्द पड़ जाता है या फिर रात दिन अहर्निश

आत्मा की आवाज़ के रुप में नाद सुनाई देता है । यही नहीं, जीवन के अंतकाल, अंतिम साँस तक मुख्य रूप से दाहिने कर्ण से सुनाई देता है ।

प्रश्न - नाद के कितने प्रकार है ?

उत्तर - सामान्यतया नाद के दस प्रकार है । इनमें तमरे (एक कीटक) का नाद, घंट नाद, बादलों की गर्जना का नाद, वेणु नाद, जैसे विविध नाद समाविष्ट है । आगे चलकर प्रणवमंत्र या ॐ कार के जैसा नाद भी सुनाई देता है । नादानुसंधान की साधना मन को शांत करने में सहायभूत होती है और वैज्ञानिक भी है ।

प्रश्न - नाद का लाभ क्या आम आदमी उठा सकता है ?

उत्तर - नाद का लाभ कोई भी उठा सकता है जिनको उसमें रस और रुचि हो । इतना ही नहीं, जिन्हें आत्मोत्कर्ष करने की लगन लगी हो वह नादानुसंधान का आश्रय ले सकता है । इससे उसे कोई हानि या नुकसान होने की संभावना नहीं है । नाद संसारी और साधु सभी के लिए समान रूप से लाभदायी है ।

* * *

६१. गुरु के बारे में

प्रश्न - दो वर्ष पूर्व मेरे सदगुरु की मृत्यु हुई तब से मेरे शोक का कोई अंत नहीं । मेरे जीवन का सभी रस समाप्त हो चुका है । जीवन निरस हो चुका है । जब मेरे गुरु थे तब मैं समय समय पर उनके पास पहुँच जाता और उनके मार्गदर्शन से जीवन को उजागर करता था । अब उस लाभ से वंचित हो जाने के कारण बहुत दुःखी हूँ । मुझे अब क्या करना चाहिए ? क्या अन्य, दूसरे गुरु को ढूँढना चाहिए ?

उत्तर - आप अपने गुरु को मृत क्यों मानते हैं ?

प्रश्न - उसमें मानने न मानने का कोई सवाल ही नहीं । वास्तव में उनकी मृत्यु हो चुकी है यह हकीकत है और उस बात की सबको जानकारी है ।

उत्तर - गुरु कभी नहीं मरते । सिर्फ उनका पार्थिव शरीर नष्ट होता है । वह दूसरा रूप धारण कर ले तब भी उनका नाश संभव नहीं क्योंकि उनकी आत्मा अमर होती है और कार्य करती है । उस अर्थ में कहता हूँ की आपके गुरु की मृत्यु नहीं हुई है । इस सत्य को आप जानोगे तो आपको गुरु की मृत्यु का शोक कभी नहीं होगा । उनके अस्तित्व और अनुग्रह का अनुभव आप आज भी कर सकते हैं ।

प्रश्न - गुरु ने अपने शरीर का त्याग कर दिया हो तब भी वह अपने शिष्यों पर अनुग्रह या कृपा कर सकते हैं ?

उत्तर - अवश्य कर सकते हैं । कृपा या अनुग्रह केवल स्थूल शरीर से नहीं हो सकती, सूक्ष्म शरीर से ही संभव है । महत्वपूर्ण बात तो यह है कि आपके गुरु के प्रति आपकी श्रद्धा या भक्ति अभी भी है या नहीं, यह देखना होता है । आज भी आप अपने गुरु का पहले जैसा ही प्रेम, आस्था, श्रद्धा विश्वास से यदि स्मरण करते हो तो उनके मृत्यु के कारण शोकमग्न होने की कोई आवश्यकता नहीं है । उनका मार्गदर्शन आप आज भी प्राप्त कर सकते हो । उनकी कृपा आपके समस्त जीवन पर बरसती रहती होगी ऐसे अचल विश्वास के साथ अपने जीवन में आगे बढ़ो तो उसका लाभ आजीवन मिलता रहेगा । किसी अन्य को गुरु बनाने का विचार आपको निरर्थक लगेगा । आपके अपने दिवंगत गुरु की पवित्र प्रेरणा, कृपा से आपके जीवन में नवीनता आएगी, संजीवनी प्राप्त होगी और आप यह महेसूस करेंगे कि गुरु आपके पास, आपके करीब ही हैं ।

प्रश्न - आपके दर्शन किए और आपके प्रवचन सुनने के बाद मैं आपको ही गुरु मानता हूँ और आपसे विधिवत् दिक्षा ग्रहण करने की तीव्र अभिलाषा रखता हूँ तो आप मुझे शिष्य के रुप में स्वीकार करें एसी आपसे मेरी प्रार्थना है ।

उत्तर - मैं किसीका गुरु नहीं बन सकता । मैं स्वयं में एसी कोई योग्यता या गुण नहीं देख पाता कि मैं गुरु बन पाउँ । किसी अन्य के साथ मेरा गुरु-शिष्य जैसा कोई संबंध नहीं है । मैं किसीको विधिवत् दिक्षा नहीं देता हूँ । फिर भी कोई व्यक्ति मेरे प्रति गुरुभाव या भक्तिभाव रखता हो और उससे यदि उसे कोई लाभ होता हो तो मुझे उससे कोई आपत्ति नहीं है । कोई व्यक्ति मुझसे कोई मंत्र माँगता है तो मैं उसकी प्रवृत्ति एवम् रुचि के अनुरुप मंत्र सूचित करता हूँ । कोई व्यक्ति मेरे प्रति गुरुभाव रखकर

यदि अपने जीवन में प्रगति कर पाता है तो उससे मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? कोई व्यक्ति अपनी साधनामार्ग की कठिनाई के निराकरण के संदर्भ में मुझे प्रश्न करे तो मैं अपनी बुद्धिशक्ति एवम् अनुभूति के आधार पर उसका उत्तर देना पसंद करुँगा ।

प्रश्न - क्या मेरे लिए गुरुदिक्षा लेना आवश्यक है ?

उत्तर - उसका निर्णय आपको खुद ही लेना होगा, मैं नहीं ले सकता ।

प्रश्न - किसी बाह्य गुरु से दिक्षा न ली हो तब भी आत्मोत्कर्ष की साधना में प्रगति कर सकते हैं ?

उत्तर - किसी अन्य बाह्य गुरु की सहायता के बिना भी आत्मोत्कर्ष की साधना में प्रगति कर सकते हैं परंतु उसके लिए महर्षि रमण जैसे महात्मा सिद्ध पुरुषों की भाँति पूर्वजन्म के प्रबल आध्यात्मिक संस्कारों की आवश्यकता रहती है । ऐसे महान एवम् सिद्ध पुरुषों का परमात्मा मार्गदर्शन करते हैं । अन्य व्यक्तिओं को जहां उनका मन निश्चित करता है वहीं गुरुभाव को स्थापित करके प्रगति करनी होती है । अगर गुरुभाव स्थापित करने योग्य कोई व्यक्ति ना भी लगे वहाँ परमात्मा ही सभी के परमगुरु बनता है, यह दृढ विश्वास रखकर ही अपने अंदर परमात्मा के प्रति आस्थाभाव जगाकर आगे बढ़ सकते हैं । आवश्यकता पड़ने पर, सुअवसर पाकर परमात्मा स्वयं ही साधक को सुयोग्य गुरु तक पहूँचाता है या तो साधक का मार्गदर्शक बनकर उसे ज्ञान का प्रकाश एवम् सनातन शांति का सहभागी बनाता है ।

प्रश्न - जिन महापुरुषों ने अपने स्थूल शरीर का परित्याग कर दिया हो उनके प्रति गुरुभाव रखना चाहिए या नहीं ?

उत्तर - अवश्य रखना चाहिए । महात्मा पुरुषों की सत्ता एवम् उनकी आत्मिक शक्ति उनके अपार्थिव सूक्ष्म शरीर में कार्यरत रहकर अन्यों की सहायता करती है । अतः उनके प्रति गुरुभाव रखने में कोई आपत्ति नहीं है ।

प्रश्न - वह हमारे प्रत्यक्ष होकर क्या हमें मंत्र प्रदान कर सकते हैं या हमें दीक्षित कर सकते हैं ?

उत्तर - अवश्य । यदि उनकी इच्छा हो तो स्वप्न में, ध्यान में, जाग्रत अवस्था में भी हमारे समक्ष प्रकट होकर, प्रत्यक्ष होकर मंत्र प्रदान कर सकते हैं, दीक्षित कर सकते हैं । अन्योन्य रूप से जीवन का पथप्रदर्शन कर सकते हैं । परन्तु उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमारी भी उच्च कक्षा की पूर्वतैयारी होनी चाहिए ।

प्रश्न - उच्च कक्षा की पूर्वतैयारी का क्या मतलब है ?

उत्तर - हमारे अंतर्मन में ऐसे प्रातःस्मरणीय आदर्श महापुरुषों के प्रति अति आदर, सम्मान एवम् प्रेम तथा आस्था होनी चाहिए । एसे महापुरुषों की कृपा प्राप्त करने की लगन होनी चाहिए और वह लगन या उत्कंठा भी एक दो दिन, महिने या वर्ष के लिए मर्यादित नहीं बलकि निरंतर क्षणक्षण के लिए

होनी चाहिए । महापुरुषों के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए ऐसी योग्यता का निर्माण करना आवश्यक है । जिन्होंने भी यह योग्यता हासिल की है, स्वयं को सिद्ध किया है उन्होंने यह लाभ लेकर अपने जीवन को कृतार्थ किये हैं ।

प्रश्न - एसे महापुरुष आत्मज्ञान दे सकते हैं ?

उत्तर - क्यों नहीं ? उनकी असाधारण शक्ति के कारण महापुरुष अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी कर सकते हैं । वह संपूर्णरूप से स्वतंत्र है । शर्त मात्र यही है कि उनकी मनोकामना करनेवाले लोगों को उनके मार्गदर्शन के अनुरूप जीवन व्यतीत करना चाहिए ।

* * *

६२. ईश्वर का दर्शन

प्रश्न - क्या ईश्वर आसानी से मिलते हैं या मुश्किल से ?

उत्तर - इसके उत्तर का आधार आप पर है । अगर आप उनके लिये आतुर हृदय से तडपते और तरसते होंगे तो वे आपको आसानी से मिल जाएँगे । श्री रामकृष्ण परमहंसदेव ने तो यहाँ तक कहा है कि कलियुग में मनुष्य यदि तीन ही दिन ईश्वर को सच्चे दिल से प्रार्थना करे तो ईश्वर उसे मिल सकते हैं । ऐसे महान संतपुरुष की वाणी कभी गलत नहीं हो सकती । किंतु इसके लिये ऐसी व्याकुलता की आवश्यकता है । ईश्वर के लिए कार्य करने की शक्ति चाहिए, तमन्ना चाहिए । ये सब न हो और अत्यंत मन्द गति से गाडी चलती हो तो वह ईश्वर के समीप कब पहूँचेगी ? आप ही कहीए ? ऐसे मनुष्य को अनेक जन्म लग जाएँगें । अतएव ईश्वर आसानी से मिलते हैं या मुश्किल से यह प्रश्न ही बेकार है । जिसे ईश्वर प्राप्त करना हो वह ऐसे प्रश्न नहीं करेगा । वह तो ईश्वर के लिये कितना ही समय क्यों न चला जाए, कैसा भी त्याग क्यों न करना पडे तो भी वह तैयार ही रहेगा । वह अपना काम किये जायेगा । सागर में मोती लेने के लिये डूबकी लगानेवाले लोग मोती कितनी भी गहराई में है उसका विचार नहीं करते । वे तो गोता लगा देते हैं और मोती लेकर ही बाहर आते है । एक कामी पुरुष की कथा आपने सुनी न होगी तो पढी अवश्य होगी । वह नदी में तैरते हुए शब को नैया मानकर नदी के उस पार उतर गया और साँप को रस्सी समझकर, उसे पकडकर घरके उपर चढ गया । यह बात सच्ची हो या झूठी, समझने की बात यही है कि क्या आपमें उतनी तडपन या तमन्ना ईश्वर को मिलने के लिए है ? इसे ही प्रेम या विकलता कहते हैं । इनकी आवश्यकता है । इतना होने पर ईश्वर आसानी से मिल सकते हैं ।

प्रश्न - वर्तमानयुग में किसी को ईश्वर का दर्शन होना संभव है ?

उत्तर - क्यों नहीं ? वर्तमान युग में भी ईश्वर का दर्शन हो सकता है । ईश्वर के दर्शन में कोई काल, कोई समय अवधि बाधा नहीं बन सकती ।

प्रश्न - परंतु यह तो घोर कलियुग है ।

उत्तर - तो क्या हुआ ? सृष्टि में बाह्य रूप से भले ही कलियुग हो, आपके मन में, आपके अंतर में, आपके अंतरंग जीवन में कलियुग न हो यही देखना आवश्यक होता है । यदि आपके मन अंतर में, आपके जीवन में कलियुग के दोष नहीं है तो आपकी जीवनयात्रा का रास्ता आपको साफ नज़र आएगा । और आज के इस घोर कलियुग में भी आप अपने आपको, अपने जीवन को पवित्र एवम् निष्कलंक रख पाऐंगे ।

प्रश्न - क्या एसा जीवन कठिन नहीं होगा ?

उत्तर - कठिन हो या न हो परंतु असंभव तो नहीं है । इसलिए उसमें आशा रही हुई है । चारों ओर विरोधी और प्रतिकूल वातावरण हो, जीवन की अमर्यादा प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच जीवन व्यतीत करना कठिन होता है यह सत्य है किन्तु उसके लिए प्रामाणिक प्रयत्न भी करना चाहिए । आज तक अनेक सिद्ध पुरुषों ने, महात्माओं ने ऐसे अनेक प्रयोग किए हैं, और उसमें उन्होंने सफलता भी प्राप्त की

है । आप भी सफलता प्राप्त कर सकते हैं । कलियुग की एक और विशेषता भी है । कलियुग के बारे में शास्त्रों, पुराण एवम् महापुरुषों ने सर्वसंमत स्वर से यह कहा है कि कलियुग जैसा अन्य कोई युग आनेवाला नहीं है । उसमें जीव यदि चाहे तो ईश्वरकृपा से स्वयं का कल्याण शीघ्रता से कर सकता है । कलियुग में दोष या दूषणों की मात्रा ज्यादा है तो उससे मुक्ति प्राप्त करने की दिशाएँ और अवसर भी अधिक हैं । अतः हमें निराश होकर, धैर्य गवाँकर स्वयं को या अन्य को दोषी मानकर बैठे रहने की जरूरत नहीं है । ऐसी परिस्थिति में से भी मार्ग निकल सकता है । उसके लिए कोशिश करने के अलावा हम और कर भी क्या सकते है ? समय कितना ही प्रतिकूल क्यों न हो, हमे उस समय से ही काम लेना है । ये न भूलें कि हम वक्त को परिवर्तन करने की ताकत रखते है । हालात को बदलने के लिए हम व्यक्तिगत या समष्टिगत साधना का आधार ले सकते हैं परन्तु यह समय के साथ रहकर ही संभव हो सकेगा । जब तक हम हमारे प्रयासों में कामयाब नहीं हो जाते, हमारे पास विषम वायुमंडल में साँस लेने के अलावा कोई चारा नहीं है । हमें सिर्फ यह देखना है कि ये हमारे लिए घातक नहीं परंतु जीवनप्रदायक बनें, दुःखदायक नहीं परंतु सुखदायक बने । यदि हम ऐसा कर पाए तो हमारे लिए अनावश्यक चिन्ता और भय रखने का कोई कारण नहीं है ।

प्रश्न - आपने जो भी कुछ कहा यह सब सुनने में तो आनंद आता है परन्तु वास्तविकता की धरती पर जब कदम रखते हैं तो हिम्मत टूट जाती है । ऐसा क्यों ?

उत्तर - आपको नाहिम्मत क्यों बनना चाहिए ? किस बात का भय है ?

प्रश्न - चारों ओर वातावरण ही जब इतना विरोधाभासी, विपरीत, प्रतिकूल या विषमय हो तो भयभीत होना स्वाभाविक है । कभी कभी तो ऐसी परिस्थिति में से मार्ग निकालना मुश्किल हो जाता है । ऐसा क्यों ?

उत्तर - ऐसे समय में, ऐसी परिस्थितिओं में भयभीत, नाहिम्मत होना सही नहीं है । यह अनुचित, अयोग्य होगा । विवेक, हिम्मत, धैर्य और निरंतर प्रयत्नों से प्रार्थना के माध्यम से यदि शांतिपूर्ण रूप से मार्ग ढूँढने का प्रयास करोगे तो तुरन्त ही ना सही, कभी ना कभी सफलता तो प्राप्त होगी । आज तक ऐसे कई महात्माओं ने, साधकों ने ऐसे ही सफलता प्राप्त की है ।

* * *

६३. ईश्वरदर्शी संतपुरुष

प्रश्न - क्या ऐसे कोई महापुरुष अभी जीवित होंगे जिनको ईश्वर का साक्षात्कार हुआ हो ? अगर हाँ तो क्या हमारे जैसे साधारण मनुष्य को उनके दर्शन व समागम का लाभ मिल सकता है ?

उत्तर - ऐसे महापुरुष अवश्य विद्यमान है और उनके दर्शन व समागम का लाभ सबको मिल सकता है ।

प्रश्न - उसके लिए हमें मुख्य रूप से क्या करना होगा ?

उत्तर - उनसे साक्षात्कार करने की, उनसे लाभ प्राप्त करने की प्रबल कामना होनी चाहिए और अपनी कामनापूर्ति करने हेतु सात्विक मन से ईश्वर को प्रार्थना करनी चाहिए ।

प्रश्न - उसके अतिरिक्त अन्य क्या करना चाहिए ?

उत्तर - इतना काफी है, परन्तु एक बात का स्मरण रहे कि आपको महात्मा या सिद्धपुरुष मिले या न मिले उनकी राह देखने के बजाय अपने आपको उस साँचे में ढालकर ईश्वर के पास पहुँचने का अथक प्रयास करना चाहिए । आप अपने जीवन में जिस स्वस्थता एवम् शांति की कामना करते हो, वह स्वस्थता और शांति तभी प्राप्त हो सकती है जब आप अपना सुविकास करके प्रभु के करीब पहुँचने के निरंतर प्रयास में निमग्न हो । महापुरुष के दर्शन, साक्षात्कार का लाभ प्राप्त करके आखिरकार आपको अपना सुविकास ही करना होता है ।

प्रश्न - ऐसे ईश्वरदर्शी, ईश्वरीय कृपापात्र महापुरुष हम पर अनुग्रह करके क्या अपनी सभी अभिलाषा व इच्छा की पूर्ति न कर दे ? वे हमें ईश्वर से साक्षात्कार ना करवा सके ? समाधि या ईश्वर दर्शन प्राप्त न करा सके ?

उत्तर - ऐसा हमें क्यों कराना चाहिए ? ऐसी उम्मीद हमें क्यों रखनी चाहिए ?

प्रश्न - हम पर अनुग्रह के हेतु ।

उत्तर - परन्तु हम पर वैसी कृपा वे क्यों करे ? वैसे भी हम पर महात्मा पुरुष कृपा करे वैसी योग्यता भी हममें होनी चाहिए न ?

प्रश्न - रामकृष्ण परमहंस ने अपने शिष्य विवेकानंद पर कृपा करके उनको मा भगवती जगदंबा से साक्षात्कार करवाया था, दर्शन करवाया था इतना ही नहीं विवेकानंद को समाधि अवस्था की अलौकिक अनुभूति का भी एहसास नहीं कराया था ? ठीक वैसे ही कोई महापुरुष, सिद्ध पुरुष हमारे मस्तक पर हाथ रखे तो भवसागर पार हो जाए, दर्शन प्राप्त हो जाएँ, समाधि स्थिति की अनुभूति हो जाएँ, विविध सिद्धियाँ प्राप्त हो जाए, तब तो साधना करने का प्रयास भी न करना पडे और अपने आप ही सप्तमी भूमिका पर हम पहुँच जाएँ ।

उत्तर - परंतु ऐसे कोई प्रतापी, दैवी महापुरुष आपको मिले और आपके मस्तक पर हाथ रखे तब ना ? आप ऐसे महापुरुष से इसलिए मिलना चाहते हो ताकि बिना किसी योग्यता आप सिद्धि प्राप्त कर सके ? शायद आपको सिद्धपुरुष प्राप्त भी हो जाए तो वह आपकी सहायता करेंगे एसा कैसे मान लिया जाए ? वह सिद्धपुरुष आपके मस्तक पर हाथ रखेंगे और आपको समाधि प्राप्त होगी, और समाधि की अवस्था को आप सहन कर पाओगे ऐसा मान लेने की कोई आवश्यकता नहीं है । आपने विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस की बात की परन्तु क्या यह कभी सोचा है कि शिष्य विवेकानंद पर उनके गुरु महात्मा रामकृष्ण परमहंस की इतनी कृपा क्यों हुई ? विवेकानंद के व्यक्तित्व की विराटता, विशालता कितनी थी क्या आपको ज्ञात है ? गुरु परमहंस उन पर इसलिए इतनी कृपा की क्योंकि विवेकानंद अपने गुरु के इस अनुग्रह कृपा को सहन कर पाए । रामकृष्ण परमहंस के एक और शिष्य भक्त मथुरबाबु का क्या हुआ था, ज्ञात है ? जब रामकृष्ण परमहंस ने शिष्य मथुरबाबु के मस्तक पर हाथ रखा तो वह उनका तेज सहन नहीं कर पाए और चित्कार कर उठे । अतः बिना किसी प्रयास किए, बिना अपने अधिकार को जमाए, अपने आपको योग्य बनाए, सिद्धि प्राप्त करने की लालसा मन में नहीं रखनी चाहिए । उचित तो यह होगा कि स्वयं को सिद्धि प्राप्त करने के योग्य बनाया जाय ।

* * *

६४. अश्रद्धा का उपाय

प्रश्न - मैं कितने वर्षों से नियमित एवम् निरंतर रुप से नामजप और ध्यान की साधना करता था, उससे मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गई थी । मुझे शांति, सुख एवम् आनंद की अनुभूति एवम् अलग अलग प्रकार की अनुभूति भी हुई थी । परन्तु कुछ समय से मेरे मन की अवदशा हुई है, मेरी श्रद्धा ड़गमगाने लगी है । ईश्वर नामस्मरण, जप, ध्यान में मुझे अब कोई रुचि नहीं रही, ना ही मुझे किसी प्रकार का आनन्द आता है । ना ही ध्यान जैसी किसी अन्य साधना में मेरा मन लगता है । मैं बहुत निराश हो चुका हूँ । मानसिक रुप से टूट चूका हूँ । मेरा जीवन व्यर्थ व्यतीत हो रहा है । मुझे अपने जीवन के प्रति कोई रस-रुचि नहीं रही । मुझे क्या करना चाहिए ? किसी संत महात्मा से साक्षात्कार करने की भी इच्छा नहीं हो रही । परन्तु आज दोपहर तीन बजकर दस मिनट पर आपके दर्शन हुए और मुझे प्रेरणा मिली की मुझे आपके पास पहुँचना ही चाहिए अतः मन न होते हुए भी बगैर किसी श्रद्धा भक्ति लिए मैं आपके पास आया हूँ । कोई उपाय बताएँगे तो हम पर कृपा होगी ।

उत्तर - आपकी श्रद्धा टूट गई है, अनास्था से आपका मन घिर गया है ? क्या इस स्थिति के लिए कुछ हुआ है क्या ?

प्रश्न - नहीं । मुझे कुछ भी पता नहीं है कि क्या हुआ है ।

उत्तर - कोई बात नहीं । परन्तु अपने जीवन को यदि पुनः रसिक या सुख, शांति एवम् श्रद्धा से महेकाना हो और उज्जवल बनाना हो तो पहेले की तरह पुनः एक बार फिर नामजप की साधना को प्रार्थना के साथ आरंभ कर देना चाहिए ।

प्रश्न - प्रार्थना के साथ ?

उत्तर - हाँ, प्रार्थना की शक्ति असीम है, अनन्त है । प्रार्थना का आश्रय लेकर ईश्वर के पादपद्मों में आत्मनिवेदन करते हुए सात्विक सच्चे मन से प्रतिदिन यह कहते रहो कि हे प्रभु ! मेरे जीवन में सुखशांति प्रदान करो, श्रद्धा का दिपक मेरे अंतर मन में जलाओ, जीवन रस जगाओ । परिणाम यह होगा कि परम कृपालु परमात्मा की कृपा होगी ही । जीवन उज्जवल होगा, धन्य हो जाएगा । प्रार्थना तो जीवन की संजीवनी औषधि है । प्रार्थना का आश्रय लेकर उसके साथ पुनः ईश्वर नामस्मरण जाप करना आरंभ कर दो ।

प्रश्न - परन्तु मुझे उस बात में किसी प्रकार की रुचि ही नहीं है और ना ही ऐसा कुछ करने की मुझे इच्छा होती है तो मैं क्या करुं ?

उत्तर - मन हो या न हो किन्तु साधना का आरंभ कर दो । रोगी को हरवक्त उसकी औषधि लेना पसंद ही हो ऐसा नहीं होता । फिर भी उसे औषधि का आश्रय लेना ही पड़ता है । कभी कभी उनकी भलाई के लिए जबरदस्ती भी करनी पड़ती है । साधना आरंभ करते ही जीवन रसमय हो जाए ऐसा नहीं हो पाता । परंतु साधना करते करते जीवनरस आ ही जाएगा, यह निश्चित है । अतः रस हो या न हो, रुचि हो या न हो साधना तो करनी ही चाहिए ।

प्रश्न - मेरी अधूरी ईश्वर नाम स्मरण की साधना को पुनः कब से आरंभ करूँ ? आरंभ करने के लिए कौन-सा दिन शुभ होगा ? यह देखकर ही आरंभ करना चाहता हूँ ।

उत्तर - आप इतने दिनों तक निष्क्रिय बैठे रहे । अब ओर अधिक समय इस तरह बिना किसी वजह निष्क्रिय होकर बैठे रहना उचित न होगा । जीवन अत्यंत गतिमान है । जल के प्रवाह की तरह जीवन प्रतिक्षण आगे बढ़ता रहता है । अपने जीवन में यदि कुछ प्राप्त करना चाहते हो तो पुरुषार्थ करने में क्षणमात्र का भी विलंब नहीं करना चाहिए । आप किस प्रकार के शुभ दिन की अपेक्षा कर रहे हैं ? हर दिन शुभ होता है । आपके अंतरमन में उत्साह भरकर आप ही शक्ति एवम् क्षमता के अनुरूप आज से, इसी क्षण से साधना का शुभारंभ कीजिए । आप साधनारुपी पवित्र सत्कर्म करेंगे तो आपका पूरा दिन और आपका समस्त समय शुभ व अच्छा ही जाएगा । उसके लिए किसी शुभ मूहुर्त देखने की आवश्यकता नहीं है और ना ही किसी प्रकार का इन्तजार करने की आवश्यकता होनी चाहिए ।

प्रश्न - यदि मैं मेरी साधना को पुनः आरंभ करूँ तो क्या उससे मुझे मानसिक स्थिरता, शांति और प्रसन्नता की प्राप्ति होगी ?

उत्तर - अवश्य होगी । उसमें किसी भी प्रकार का संदेह करने की आवश्यकता नहीं है । वह उस बात पर निर्भर होगा कि आपके नियमित और निरंतर अथक प्रयास हो । वह अथक प्रयास, पुरुषार्थ ही आपको मनवांछित फल प्रदान कर सकता है ।

* * *

समाप्त

* * *

About the Author

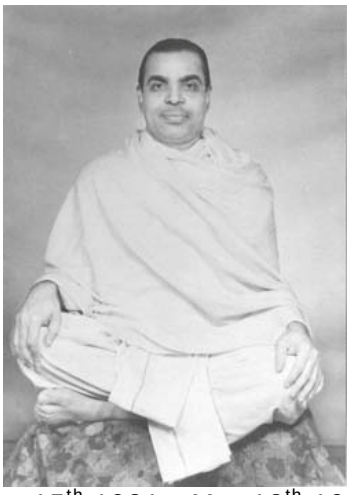

(Aug 15th 1921 - Mar 18th 1984)

Author of more than hundred books, Mahatma Shri Yogeshwarji was a self-realized saint, an accomplished yogi, an excellent orator and an above par spiritual poet and writer. In a fascinating life spanning more than six decades, Shri Yogeshwarji trod the path of spiritual attainments single handedly. He dared to dream of attaining heights of spirituality without guidance of any embodied spiritual master and thus defied popular myths prevalent among the seekers of spiritual path. He blazed an illuminating path for others to follow.

Born to a poor Brahmin farmer in a small village near Ahmedabad in Gujarat, Shri Yogeshwarji lost his father at the tender age of 9. He was taken to a Hindu orphanage in Mumbai for further studies. However, God's wish was to make him pursue a different path. He left for Himalayas early in his youth at the age of 20 and thereafter made holy Himalayas his abode for penance for nearly two decades. During his stay there, he came across a number of known and unknown saints and sages. He was blessed by divine visions of many deities and highly illumined souls like Raman Maharshi and Sai Baba of Shirdi among others.

Yogeshwarji's experiences in spirituality were vivid, unusual and amazing. He succeeded in scaling the highest peak of self-realization resulting in direct communication with the Almighty. He was also blessed with extraordinary spiritual powers (siddhis) illustrated in ancient Yogic scriptures. After achieving full grace of Mother Goddess, he started to share the nectar for the benefit of mankind. He traveled to various parts of India as well as abroad on spiritual mission where he received enthusiastic welcome.

He wrote more than 100 books on various subjects and explored all form of literature. His autobiography 'Prakash Na Panthe' - much sought after by spiritual aspirants worldwide, is translated in Hindi as well as English. A large collection of his lectures in form of audio cassettes are also available.

For more than thirty years, Yogeshwarji kept his mother (Mataji Jyotirmayi) with him. Yogeshwarji was known among saints of his time as Matrubhakta Mahatma. Shri Yogeshwarji left his physical body on March 18th 1984, while delivering a lecture at Laxminarayan Temple, Kandivali in Mumbai.

Shri Yogeshwarji left behind him a spiritual legacy in the form of Maa Sarveshwari. It has been ages since we have come across a saint of Yogeshwarji's caliber and magnitude. His manifestation will continue to provide divine inspiration for the generations to come.

*

श्री योगेश्वरजीનું સાહિત્યિક પ્રદાન

આત્મકથા	પ્રકાશના પંથે ▪ પ્રકાશના પંથે (સંક્ષિપ્ત)▪ **प्रकाश पथ का यात्री** ▪ Steps towards Eternity
અનુવાદ	રમણ મહર્ષિની સુખદ સંનિધિમાં(In days of great peace) ▪ ભારતના આધ્યાત્મિક રહસ્યની ખોજમાં (A search in secret India) ▪ હિમગીરીમાં યોગી (A hermit in the Himalayas)
ગદ્યકાવ્યો	અક્ષત ▪ અનંત સૂર ▪ ફૂલવાડી ▪ પરિમલ ▪ સ્વાતિબિંદુ ▪ સનાતન સંગીત ▪ Tunes unto the infinite
ગીતો	હિમાલય અમારો ▪ રશ્મિ ▪ બિંદુ ▪ તર્પણ ▪ દ્યુતિ
ચિંતન	બ્રહ્મસૂત્ર ▪ ગીતાદર્શન ▪ ગીતાનું સંગીત ▪ ગીતા સંદેશ ▪ ગીતા તત્વ વિચાર ▪ જીવન વિકાસના સોપાન ▪ ઈશાવાસ્યોપનિષદ ▪ ઉપનિષદનું અમૃત ▪ ઉપનિષદનો અમર વારસો ▪ પ્રેમભક્તિની પગદંડી (નારદ ભક્તિસૂત્ર) ▪ શ્રીમદ્ ભાગવત ▪ ગોપીપ્રેમ ▪ યોગદર્શન ▪ પતંજલિના યોગસૂત્રો (સંક્ષિપ્ત સૂત્રાર્થ)
ભજનો	આલાપ ▪ આરતી ▪ અભીપ્સા ▪ પ્રસાદ ▪ પ્રેમાલાપ ▪ અંતરનો અનુરાગ ▪ સ્વર્ગીય સૂર ▪ સંતવાણી ▪ સાંઈ સંગીત ▪ તુલસીદલ
મહાકાવ્યો	રામાયણ દર્શન ▪ કૃષ્ણ રુક્મીણિ ▪ ગાંધી ગૌરવ ▪રસામૃત (રામકૃષ્ણ)
લેખ	આરાધના ▪ આત્માની અમૃતવાણી ▪ ચિંતામણી ▪ ધ્યાન સાધના ▪ Essence of Geeta ▪ પ્રભુપ્રાપ્તિનો પંથ ▪ પ્રાર્થના સાધના છે ▪ સાધના ▪ યોગમિમાંસા ▪ શ્રીરામ કથામૃત
જીવનચરિત્ર	ભગવાન રમણ મહર્ષિ જીવન અને કાર્ય -▪ મા સર્વેશ્વરી એક પરિચય -▪
પદ્યાનુવાદ	(દુર્ગાસપ્તશતીસાર) ચંડીપાઠ▪ રામચરિતમાનસ ▪ શિવપાર્વતી પ્રસંગ ▪ સુંદર કાંડ ▪ સરળ ગીતા ▪ શિવમહિમ્નસ્તોત્ર ▪ વૈરાગ્યશતક ▪ વિષ્ણુસહસ્ત્રનામ ▪ ઉપદેશપંચકમ્ ▪ દસ ઉપનિષદ ▪ નારદ ભક્તિસૂત્ર ▪ ચર્પટપંજરિકા સ્તોત્ર ▪ પાતંજલ યોગદર્શન
પ્રવચનો	અમર જીવન ▪ પાતંજલ યોગદર્શન ▪ કર્મયોગ ▪ આત્મસંયમયોગ ▪ પુરૂષોત્તમયોગ
પ્રસંગો	ધૂપસુગંધ▪ કળીમાંથી ફૂલ ▪ મહાભારતના મોતી ▪ પરબનાં પાણી ▪ સંતસમાગમ ▪ સત્સંગ ▪ સંત સૌરભ ▪ દિવ્ય અનુભૂતિઓ ▪ શ્રેય અને સાધના ▪ **श्रेय और साधना**
પ્રવાસ	તીર્થયાત્રા ▪ ઉત્તર ભારતનાં તીર્થો ▪ સમંદરને પેલે પાર
પત્રો	હિમાલયનાં પત્રો
પ્રશ્નોત્તરી	અધ્યાત્મનો અર્ક ▪ ધર્મનો મર્મ ▪ ધર્મનો સાક્ષાત્કાર ▪ **ઈશ્વર દર્શન**
નવલકથા	આગ ▪ અગ્નિપરીક્ષા ▪ કાદવ અને કમળ ▪ કાયાકલ્પ ▪ પરભવની પ્રીત ▪ રક્ષા ▪ સમર્પણ ▪ સ્મૃતિ ▪ પરિક્ષિત ▪ પ્રીતપુરાની ▪ પ્રેમ અને વાસના ▪ રસેશ્વરી ▪ ઉત્તરપથ ▪ યોગાનુયોગ
વાર્તાઓ	રોશની
નાટક	રામનું હૃદય

*

For more information
on Life and works
of

Shri Yogeshwarji

Please visit

www.swargarohan.org

A Gujarati supersite for spiritual aspirants